अंधा मन

उड़िया के रोचक और मार्मिक
उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर

लेखक
कृष्णप्रसाद मिश्र
अनुवादक
शंकरलाल पुरोहित

१९७७
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९७७
मूल्य : रु० १०.००

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली

प्रकाशकीय

कई वर्ष पूर्व हमने भारत की प्रमुख भाषाओं के चुने हुए उपन्यासों को हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध कराने की योजना तैयार की थी और उसके अंतर्गत कई उपन्यास निकाले थे। पाठकों ने उन उपन्यासों को बहुत पसंद किया और उनमें से कई के एकाधिक संस्करण हुए।

उसी श्रृंखला में अब हम पुनः कुछ उपन्यास प्रकाशित कर रहे हैं। मराठी की 'मेघ मल्हार' और बंगला की 'लहरों के बीच' कृतियों को पाठक हाल ही में पढ़ चुके हैं। अब उन्हें उड़िया के जाने-माने लेखक का यह उपन्यास सुलभ हो रहा है। इसके रचयिता उत्कल विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। उनकी अनेक कहानियों के रूपान्तर हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं।

उपन्यास कैसा है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे, पर इतना हम कह सकते हैं कि पाठक इसे रुचिपूर्वक पढ़ेंगे।

इस योजना के अंतर्गत हम और भी उपन्यास निकाल रहे हैं। हमारा यह भी प्रयत्न है कि विश्व की कुछ प्रमुख भाषाओं के उपन्यास भी हम अपने पाठकों को दें।

—मंत्री

दो शब्द

'अंधा मन' हिन्दी के पाठकों को सुलभ हो रहा है, यह मेरे लिए बड़े आनंद का विषय है। उड़िया में यह कृति 'सिंह कोटि' के नाम से निकली है और इसके दो संस्करण हो गये हैं, तीसरा होने जा रहा है। पाठकों और आलोचकों ने इसकी मुक्त कण्ठ से सराहना की है। मुझे पूरा विश्वास है कि हिन्दी के पाठकों के बीच भी यह खूब लोकप्रिय होगा।

उड़िया के पाठकों की तुलना में हिन्दी का क्षेत्र कहीं अधिक विशाल है। मेरी स्वाभाविक इच्छा हुई कि मेरी यह रचना देश के अधिक-से-अधिक पाठकों के हाथों में पहुंचे। अपनी इस इच्छा की पूर्ति से मेरा मन बहुत ही आह्लादित हो रहा है।

उड़िया में गल्प और उपन्यास-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। पाठकों को स्मरण होगा कि सन् १९७५ में अपने उपन्यास पर उड़िया के विख्यात लेखक श्री गोपीनाथ महन्ती ने भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार प्राप्त किया था। पर उड़िया का बहुत कम साहित्य हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हुआ है।

इस उपन्यास के हिन्दी अनुवादक श्री शंकरलाल पुरोहित का मैं आभार मानता हूं। दिल्ली विश्वविद्यालय के उड़िया प्राध्यापक डा० खगेश्वर महापात्र तथा हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा० रमानाथ त्रिपाठी के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूं। डा० त्रिपाठी ने पूरी पांडुलिपि को बड़े मनोयोग से पढ़कर कुछ सुधार किये हैं। मैं 'सस्ता साहित्य मंडल' के अधिकारियों को भी धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने मेरी इस पुस्तक को इतने सुन्दर ढंग से प्रकाशित किया है।

भुवनेश्वर

कृष्णप्रसाद मिश्र

अंधा मन

□ □

एक

"ऊँ चामुंडे जय-जय स्तंभय-स्तंभय मोहय-मोहय सर्वं मां त्वं दम दम स्वाहा।"

कड़ी धूप में सिर फटा जा रहा था। बीस हाथ के घेरे में एक भी पत्ता या लता नहीं थी। उसके बाद छोटी-छोटी लतर, बेर की झाड़ियां, बड़े-बड़े पत्थर, ऊबड़-खाबड़ जमीन और आम का बगीचा। बांस नदी में पानी सूख गया था। थोड़ी दूर पर स्थित सोलरी पहाड़ धूप के कारण धुंधला-सा दिखाई पड़ रहा था। सांतरापुर शासन[1] पाव कोस भी न होगा। बांस नदी के पाट में कुछ टहनियां डालकर और उन पर चटाई बिछाकर सोलह-सत्रह वर्ष का एक किशोर पद्मासन जमाये बैठा था। नासिकाग्र पर दृष्टि जमा रखी थी। आत्मस्थ होकर उच्चारण कर रहा था—"ऊँ चामुंडे जय-जय स्तंभय-स्तंभय..."

मंत्र के प्रथमांश का तो गंभीरतापूर्वक उच्चारण कर रहा था, पर शेषांश तक पहुंचते-पहुंचते अस्पष्ट हो जाता। जप वाचनिक से शुरू होता, उपांशु में परिणत होकर मानसिक में निश्चिह्न हो जाता। इस मंत्र का तीन हजार बार जप करना था। अबतक हजार बार हो चुका था। एक बार जप करने के बाद दाहिनी ओर रखी टोकरी में से एक कंकड़ निकालकर बायीं ओर की टोकरी में डालता जा रहा था। मंत्र-जाप की ठीक संख्या जानने का और उपाय भी न था। किशोर के सामने तीन बांस के टुकड़े त्रिभुजाकार गड़े थे। त्रिभुज के बीच लाल वस्त्र पर

---

१. ब्राह्मणों को दान में मिले हुए गांव 'शासन' कहलाते थे।

अष्टपद्म मल्ली की कुछ कलियां और एक दीया रखा था। पास में सफेद सूत की लच्छी। जप करीव वारह बजे शुरू हुआ था, अनुमान था दो बजे तक समाप्त हो जायेगा।

लताओं के झुरमुट के वाद आम के दो-तीन पेड़ थे। एक डाली पर जपकर्त्ता के दो समवयस्क किशोर बैठे, कभी गांव की ओर देखते और कभी ध्यानस्थ मित्र को। दोनों के चेहरों पर विस्मय, आश्चर्य, उत्कंठा, उद्विग्नता और सन्देह की मिली-जुली छाया थी। वीच-वीच में दोनों कभी दो-चार शव्द वोलकर चारों और फैली नीरवता को तोड़ देते।

"सचमुच क्या शिव मंत्र सिद्ध कर लेगा ?"

"अवश्य।"

"हे गोपीनाथ! मंत्रसिद्ध हो जाय। शिव की मनोकामना पूर्ण हो जाय। सुकेशी शिव को चाहने लग जाय। जीवन-भर उसकी किंकरी बन कर रहे।"

दूसरा किशोर ध्यानमग्न होकर आम की डालियों में से वालू की ओर देख रहा था। साथी की वातों की ओर उसके कान नहीं थे। मित्र वात अनसुनी कर रहा है, इससे क्षुब्ध होकर पहले किशोर ने कहा, "पता नहीं क्यों, मुझे तो विश्वास नहीं होता। महापात्र के घर के वाहरी दरवाजे के पहाड़-जैसे किवाड़ बन्द हो गए होंगे। सुकेशी भी सो रही होगी। इतने दास-दासी! सवकी नजर वचाकर कैसे आ सकेगी? असंभव! शिव का मंत्र व्यर्थ जायेगा। कलियुग में भी किसी ने मंत्र-सिद्धि की है ?"

मित्र की एकाग्रता तोड़ने के लिए तीर ठीक निशाने पर लगा था। उसने खिन्न होकर कहा, "मंत्र यदि सिद्ध न होता तो सर्वज्ञ कैसे होता? चेहरा देखकर सब वातें कैसे कह देता है? धीरज रखो, चुपचाप देखते जाओ, क्या होता है।"

उसका वोलना बन्द हो गया। दोनों चुपचाप अपनी जिम्मेदारी निभाने लगे। थोड़ी देर यही चलता रहा।

शिवनाथ को अब धूप बहुत कड़ी लग रही थी। पसीने की बूंदे गरम बालू पर गिरकर लुप्त होने लगी थीं। सिर पर गीला अंगोछा था। बहुत देर एक ही आसन पर बैठे रहने के कारण स्वांस की गति भी तेज हो गई थी। पानी के कुण्ड में धूप प्रतिबिंबित होकर दीवार पर जैसे झलमलाती है, कुछ उसी तरह का दृश्य उत्पन्न हो रहा था। अचानक दाहिनी ओर की टोकरी में और कंकड़ न रहे। तभी आम के बगीचे में कोयल तीन बार कूक उठी। तीन हज़ार की गिनती पूरी हो गयी। अपरिमित आनन्द से शिवनाथ की छाती भर गयी। उपलब्धि का—आशा, आकांक्षा और फल प्राप्ति का समय सामने आ गया था!

"ॐ चामुंडे जय-जय स्तंभय-स्तंभय मोहय-मोहय सर्वं मां त्वं दम-दम स्वाहा।"

आम के पेड़ पर बहुत देर से बैठा कौवा उड़ गया। मंत्र के उच्चारण में शायद कोयल प्रतिस्पर्धा करने लगी थी, क्योंकि उसकी कुहू-कुहू की ध्वनि और ऊंची हो उठी थी। लेकिन कौवा, कोयल या दोनों मित्र, कोई भी शिव की आंखों के आगे न थे। वह आसन छोड़कर उठ खड़ा हुआ—ध्यान का समय हो गया था।

"हे देवि! प्रसन्न हो! प्रसन्न हो! नरहरिपुर शासन के जमींदार गोविंद महापात्र की कन्या सुकेशी मुझे चाहने लग जाय, आजीवन चाहती रहे। मृत्यु तक मुझे चाहती रहे। हे देवि! सुकेशी का वदन पूर्णचंद की तरह, उसका वह केहरिकटि शरीर तप्त स्वर्ण की तरह, मूल्यवान वस्त्रादि से विभूषित है, देवि! ऐसी सुशोभना, सुवसना सुकेशी मुझे चाहने लग जाये—सदा, सदा···सदा। हे देवि, प्रसन्न हो जाइये!"

वृक्ष पर से दो किशोर अपनी चारों आंखें फाड़े देख रहे थे—अब मंत्र सिद्ध हुआ चाहता है संशयग्रस्त और आशंकित वे टकटकी लगाये हुए थे। सोच रहे थे कि प्रलयंकर झंकार सुनायी पड़ने ही वाली है। शिवनाथ के सामने आयेंगी मेघांगी दिगंबरा, मुंडमालिनी, खड्गधारिणी

...और कहेंगी—दे...दे क्या देता है ? दे...खाने को क्या...?

"लो मां, मेरा ही रक्त पीयो। पीयो..." और शिवनाथ अंगूठा काटकर दे रहा था। तथास्तु देवी···अंतर्धान।

अब प्रणय-व्याकुल सुकेशी महल से दौड़ी आयगी। मंत्र का फल यही है। निर्विघ्न जो समाप्त हुआ था, कभी वृथा नहीं हो सकता।

शिवनाथ ने ध्यान समाप्त कर मंडल की प्रदक्षिणा की और सूत संभालने में लग गया। सूत लपेटने के बाद देवी को साष्टांग प्रणिपात किया। इच्छापूर्ति न होने तक वैसे ही पड़े रहने का नियम है। शिवनाथ ने दोनों चटाइयां बिछाकर उन पर प्रणिपात किया।

शिवनाथ ने जब प्रणाम शुरू किया तो पेड़ पर की चारों आंखें बालू को नहीं, गांव की ओर देख रही थीं। अब सुकेशी "प्रिय...प्रियतम... शिव।" कहती हुई नदी की सैकत में दौड़ती आयेगी। वे सुकेशी को आते देखेंगे तो दूर से शिवनाथ को सावधान कर देंगे।

राघव ने अचानक कहा, "कोई आता दीख तो रहा है। महापात्र के घर की तरफ से ही आ रहा है।"

पार्थ ने तुरन्त प्रतिवाद किया, "हुंह। तुम्हें महापात्र के महल से आता दीख रहा है ? वह गली की तरफ से निकला है। तुम्हें दीखा नहीं ?"

राघव थोड़ी देर चुप रहा, फिर जोर से चिल्लाया, "शिव, लगता है, सुकेशी आ गयी।"

सुकेशी आ गयी ! बालू पर साष्टांग प्रणिपात की स्थिति में लेटे शिवनाथ के शरीर में जैसे बिजली प्रवाहित हो गयी—नस-नस में, रोम-रोम में, सिर से पैर तक।

पार्थ कह रहा था—"मुझे तो साफ कुछ दिखायी नहीं पड़ रहा। हां, कोई महापात्र के घर से निकला जरूर है। तूने यह कैसे जान लिया कि सुकेशी ही है ?"

निकला हुआ आदमी गांव से बाहर आते ही पेड़ों के झुरमुट में अदृश्य हो गया था। राघव का प्रस्ताव था कि ठीक से देखने के लिए

ऊपर की डाल पर चला जाय, लेकिन पार्थ की चुप्पी ने इस बात को रद्द कर दिया।-अतः पेड़ की सबसे नीचे वाली डाली पर बैठे रहकर ही उन्होंने सारा ध्यान महल पर लगा दिया। शिव उसी तरह प्रणिपातासन लगाये रहा। दक्षिणी हवा बह चली। दोनों किशोर जिस डाल पर बैठे थे, उसके पत्ते हिल उठे। तीनों उत्कंठा और लम्बी प्रतीक्षा के कष्ट से पीड़ित थे।

अचानक ग्राम के पत्ते सरसरा उठे। दोनों का ध्यान आम की डालियों की ओर चला गया। उनके ग्रनजाने ही काला-कलूटा पाणवा, मजबूत लट्ठ लिय, बगीचे के पीछे से पेड़ों की आड़ में होता हुआ एकदम नदी के पाट में पहुंच गया था। उसके खुली जगह में पहुंचते ही दोनों की नजर उस पर पड़ी। सुंदरी सुकेशी की जगह षड़ंगी के भीमकाय नौकर पाणवा को देख 'बापरे! बाप!" कहते हुए पार्थ ग्रौर राघव कूद पड़े ग्रौर दोनों पत्तों में उलझते, गिरते-पड़ते, गांव की तरफ भागे।

पत्तों की खड़खड़ाहट सुनी तो सुकेशी को देखने की ग्राशा में शिवनाथ ने थोड़ा सिर उठाया ग्रौर पाणवा से उसकी ग्रांखें चार हो गयीं। इसके बाद कब ग्रौर कैसे शिव प्रणिपातासन से खड़ा हुआ, कब सोलरी पहाड़ की ग्रोर खेतों में से होकर भागने लगा, स्वयं उसको नहीं मालूम तो बेचारे पाणवा की समझ में कैसे आता। वह शिवनाथ को यों भागते हुए देखकर चिल्लाने लगा, "हे शिवबाबू! ग्रो शिवबाबू! बड़े मालिक की तबीयत बहुत खराब है, चले आओ! तुम्हें ढूंढ़ रहे हैं। चले आओ! ग्रो शिवबाबू!"

पाणवा की आवाज से बगीचा, नदी का पाट, लता-झुंड सब जैसे कांप उठे, मानो उस अविरल भय से मध्याह्न ही कांप उठा हो।

दो

सांतरापुर शासन के दाहिनी ओर की कतार के ठीक बीच में, इधर से बीस और उधर से भी बीस घरों के बीचोंबीच, मधुसूदन षड़ंगी का मकान है। गांव के पश्चिमी छोर पर गोपीनाथजी का मंदिर और पूर्वी किनारे पर गोपीनाथ का बगीचा है। बगीचे के सहारे-सहारे रास्ता चला गया है। कुछ दूरी पर जेनामणि देवी का मन्दिर है। इस गांव में सभी घरों के बरामदे ऊंचे और हर बरामदे के सामने विवाह-व्रतादि के लिए तीन सौ पैंसठ दिन, काम आने वाली स्थायी वेदी बनी है। गांव के रास्ते और घर के चौक, दोनों ओर समान रूप से छाया देने के लिए छप्पर से भी ड्योढ़ी-दूनी ऊंचाईवाले नारियल के पेड़ वेदियों से सटे खड़े हैं।

एक षड़ंगी के घर को छोड़कर गांव के बाकी सब मकान एक जैसे थे। षड़ंगी का मकान दूसरे मकानों से ज्यादा लंबा-चौड़ा था। सभी मकानों की छत पक्की; आंगन भी सीमेंट से मजबूत और चिकना किया हुआ। गांव के कारीगर और राजमिस्त्री का कला-कौशल जितनी दूर जा सका, षड़ंगी ने घर को सुंदर, मजबूत और विशाल बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। षड़ंगी की सम्पत्ति के बारे में भी अनेक किंवदंतियां प्रचलित थीं। कहा जाता है कि पूर्वज कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, किंतु वृत्ति, मनोवृत्ति और भावना, किसी भी दृष्टि से षड़ंगी ब्राह्मण नहीं रह गया था। फिर भी उसकी अगाध सांसारिक बुद्धि और कुबेर-सा खजाना ब्राह्मणों के बीच पूजा जाता था। उसका महाजनी कारोबार दूर तक फैला हुआ था। तीन बेटे थे—रमाकांत, देवीपाद और छोटा शिवनाथ। षड़ंगी बड़ा भाग्य-शाली था कि उसके तीन बेटे हुए, वरना इस परिवार में तो बेटा गोद लेने की परम्परा ही हो गई थी। अतः षड़ंगी बेटों को आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार करता था।

रमाकान्त एम० बी० बी० एस० पासकर कटक में अपनी डाक्टरी की दुकान खोलकर बैठ गया था। मंझले देवीपाद ने बी० ए० में ही पढ़ाई

छोड़ दी थी। वेद-वेदांत-उपनिषद् में उसका मन अधिक लगता था। उसका विचित्र स्वभाव कुछ समझ में न आता था। छोटा शिवनाथ, गणित के कारण एक बार आठवीं और एक बार नवीं में अटकने के बाद, अब दसवीं में था। देवीपाद और शिवनाथ गांव में ही अपने पिता के पास रहते थे।

कुछ दिन से षड़ंगी की तबीयत ठीक नहीं थी। अचानक संक्रांति के दिन बुखार बढ़ गया और वह बहकने लगा। बूढ़ा शरीर, सामान्य रोग से भी मृत्यु का भय—इसलिए पत्नी वसुंधरा घबरा गयी। आशंकित होकर बेटों को खोजने लगी। प्रलाप की अवस्था में षड़ंगी ने 'शिव-शिव' कहकर तीन-चार बार पुकारा। पाणवा दौड़ा गया और बगीचेवाले घर से देवी को बुला लाया। किंतु शिव ? जानी-अनजानी सब जगहों, सब ठिकानों पर वह घूम आया पर शिव न मिला। अंत तक न मिलता, अगर पगले किशोर ने न बताया होता कि मित्रों के साथ शिवनाथ बांस नदी की ओर गया है।

शिवनाथ को लेकर लौटते-लौटते शाम हो गयी। बरामदे पर चढ़ते ही खबर घर के अन्दर पहुंच गई। बहुत देर तक न पाणवा लौटा और न शिवनाथ, अतः घर में सब चिंतित हो रहे थे—विशेषकर बीमार पड़ा षड़ंगी। डाक्टर ने आकर देख लिया था; अब वह पहले से कुछ ठीक था; प्रलाप बंद हो गया था; चेतना स्पष्ट थी। दोपहर में शिव को घर में न पाकर उसका मन नाना कल्पनाओं से घिर गया था।

रमाकांत को पिता की बीमारी की चिट्ठी दे दी गयी थी, तार के लिए वसुंधरा ने ही मना कर दिया था। साधारण-सी बात में घबरा जाना उसके स्वभाव में न था। फिर यह डर भी था कि रमाकांत-जैसा गुस्सैल आदमी, विशेष बात के बिना गांव बुलाये जाने पर चिड़चिड़ा उठता। मुफस्सिल का रहना उसे पसंद नहीं, चाहे एक-दो दिन के ही लिए क्यों न हो।

देवीपाद पास ही बरामदे में बैठा रामायण का पाठ कर रहा था, बल्कि कहना चाहिए कि षड़ंगी को सुना रहा था। शिवनाथ को आगे किये हुए पाणवा घर में घुसा तो देवीपाद ने रामायण से सिर उठाकर शिव को देखा और बोला, "कहां मटरगश्ती कर रहे थे दिन-भर? बरबाद हो गए तुम तो, न पढ़ना-लिखना और न कोई जिम्मेदारी!"

"शिव, इधर आना तो।" वसुंधरा ने अंदर से बुलाया।

"अबतक कहां थे?"

"खेल रहा था। मगर मैं कुछ भी करूं तुमसे मतलब?" शिवनाथ हमेशा वसुंधरा से इसी तरह ऐंठकर बोलता था।

"कहां खेल रहे थे?"

"बगीचे में।"

"बगीचे में नहीं, माजी, नदी की रेत में, चटाई बिछाकर। वहां चौकखड़ी आदि से चित्र बनाकर, धूप-अगरबत्ती जलाकर..." पाणवा ने संशोधन किया।

"क्या हुआ? हम पूजा कर रहे थे। पूजा करना क्या बुरी बात है?"

"दोपहर में नदी की रेत पर तू पूजा कर रहा था! और कोई जगह ही न मिली! सच-सच बता, क्या कर रहा था?"

"नहीं बताऊंगा।"

सारे रास्ते पाणवा की जिरह, उसके साथ धींगा-मुश्ती, भाग-दौड़...

असली बात पकड़े जाने का डर, लज्जा, साधना में विफलता—इन सब पर विचार करने के लिए शिव एकांत चाहता था। पाणवा के साथ लौटते समय उसे लगा कि दोपहर की तपती बालू में सुकेशी के लिए जलना बड़ी बेवकूफी की बात थी। उसके सीधेपन का फायदा उठा कर पार्थ और राघव खुश हो रहे होंगे। अब उसे ताज्जुब हो रहा था कि ऐसी फालतू और हास्यास्पद बात में वह उलझ कैसे गया। अपने पर

और दूसरों पर भी उसका गुस्सा बढ़ता जा रहा था।

"बताना होगा।" वसुंधरा ने जरा डपटकर कहा।

"हूं।" शिवनाथ का हर्ष पर्वताकार हो गया। सामने पाणवा नौकर जा खड़ा था।

वसुंधरा खाट से उठी और उसने शिवनाथ के गाल पर एक थप्पड़ मार दिया। शिवनाथ ने मुंह घुमा दिया था, अतः थप्पड़ कान के ऊपर लगा। दिन-भर की धूप, मेहनत, निराशा, क्रोध और अपमान के मारे शिवनाथ की आंखों के सामने धुंधलका छा गया।

···उसे सुनाकर जैसे पेड़ पर से राघव कह रहा है···सुकेशी !

नदी के पाट की ओर जैसे सचमुच सुकेशी दौड़ी आ रही है। शिवनाथ ने आंखें मलीं। बहुत देर तक धूप में देखने के कारण उसे चारों तरफ धुंधला दिखाई दे रहा है, सुकेशी है या और कोई ?

"शिव···शिव !" सुकेशी की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ता है। पीछे से वही तो बुला रही है।

"शिव !"

"हूं···" सुकेशी की ओर दृष्टि किये बिना ही शिव ने जवाब दिया।

"धूप में क्यों बैठे हो ? चलो बगीचे के अंदर ! जरा-सी बात के लिये इतना कष्ट ?"

"चलो।"

सुकेशी ने उसे हाथ पकड़कर उठाया। संकोच और आनंद से उसका रोम-रोम कांप उठा। मनोकामना पूरी होते देख उसके शरीर में बार-बार बिजली-सी कौंध जाती है। दोनों बगीचे तक चले आये। सारे रास्ते शिव सुकेशी के चेहरे की तरफ देखने का साहस तक न कर सका। बगीचे में पहुंचकर सुकेशी अपना हाथ छुड़ा पेड़ों के झुरमुट को देखती हुई कुछ आगे निकल गयी। अभी तक पेड़ों से आम तोड़े नहीं गये थे। सुकेशी के आगे निकल जाने पर शिव खड़ा हो गया। सुकेशी चली जा रही है—

सिंहकटि, गुरु नितंब...

शिव की छाती में दर्द-सा होने लगा।

अचानक लगा, सुकेशी उसकी आंखों से ओझल हो गयी है। कहां गयी, यहीं तो थी! कहीं किसी पेड़ की ओट में तो नहीं छिप गयी है? तभी सुनायी दिया जैसे कोई आवाज दे रहा है, "शिव! शिव! शिव!..."

यह आवाज वसुंधरा की थी। पाणवा उसके चेहरे पर पानी के छींटे मार रहा था। देवी निरपेक्ष होकर सब देख रहा था। षड़ंगी खाट पर पड़ा अपनी असमर्थता पर रो रहा था। व्याकुल होकर उसने कहा, "अच्छा, थप्पड़ मारा! इतना क्रोध! बच्चा मरा तो नहीं! हे भगवान्। बच्चा जी जाये, बच जाये! हे प्रभु, बचाओ उसे!"

"चुप रहो, जी! इतने घबरा क्यों रहे हो? सुबह से कुछ खाया नहीं, इसलिए बहुत कमजोरी से गश आ गया है। थप्पड़ से भी कहीं कोई मरा है?"

पाणवा शिवनाथ के नाक, कान में फूंक मारने लगा था। उसकी फुंकार क्रमशः शिव के चेतना-पटलपर स्पष्ट होती जा रही थी। होश आते ही वसुंधरा शिव के सिर को गोद में लेकर उसका माथा सहलाने लगी। शिवनाथ होश में आकर बैठ गया तो देवी ने खड़े रहना बेकार समझा और रामायण लेकर पढ़ाई वाले कमरे में चला गया। जाते-जाते कहता गया, "जानकी! जल्दी से दीया-बत्ती कर दो।"

बिस्तर से ही षड़ंगी ने पुकार कर कहा, "पहले उसे कुछ खाने को दे दो। हे भगवान्, एक संकट तो दूर हुआ!"

तीन

एक दिन नागा करने के बाद शिवनाथ स्कूल गया। षड़ंगी ने उसे आराम करने को कह दिया था। दसवीं कक्षा के 'ख' खंड का वह छात्र था। सुकेशी भी उसी खंड में थी।

बाणपुर के चौदह कोस के इलाके में गोविंद महापात्र बड़े भारी जमींदार माने जाते थे। उस तरफ 'बाबू का घर' कहने से लोग या तो षड़ंगी का या महापात्र का घर ही समझते थे। जेनामणि देवी से थोड़ा पूर्व हटकर नरहरिपुर शासन में महापात्र का घर था। बस्ती के लोग आदर से महापात्र के घर को कोठी कहते थे। सुकेशी थी उनकी इकलौती संतान—दुलारी और लाड़-प्यार तथा आदर का एकमात्र केन्द्र! घर ही नहीं, बाहर भी सुकेशी की सुंदरता चर्चा का विषय थी। स्कूल के सब शिक्षकों की वह स्नेहभाजन थी। छात्र उससे मिलने और बातचीत करने को लालायित रहते, पर पास जाने की किसी की हिम्मत न हो पाती थी। कभी कोई साहस करता भी तो शिक्षक चेतावनी देकर हतोत्साह कर देते थे। सुकेशी के प्रणयप्रार्थियों में शिव सबसे आगे था। दोस्त और शिक्षक सब इस बात से परिचित थे, किंतु शिवनाथ ने अपने व्यवहार या कार्यों से, कभी प्रकट नहीं होने दिया था कि उसका सुकेशी के प्रति झुकाव है। स्कूल में प्रतिभावान छात्र न होने पर भी वह भद्र, परोपकारी, उदार, कर्मठ और मित्रों को चाहनेवाला माना जाता था। किसी दोस्त ने कभी अनुमान के बल पर ही उसके मन की बात का प्रचार कर दिया था और शिव ने प्रतिवाद नहीं किया था।

सच वह सुकेशी को चाहता था। लेकिन ऐसी बात को कहकर भी क्या फायदा जो शुरू से आखीर तक व्यर्थता से घिरी हो। सुकेशी के चारों ओर दूसरे छात्रों की प्रेमोक्तियों, शिक्षकों के आदर और सतर्क दृष्टि का परकोटा बना हुआ था। शिव उस दीवार को फांदना नहीं चाहता था। लेकिन कभी-कभी उसे लगता कि सारी कक्षा में सुकेशी

का आदर पाने के लिए वही सबसे योग्य है। समय आयेगा जब सुकेशी उसे स्वतः खोज लेगी। अतः वह हमेशा कक्षा में पिछली बेंच पर बैठता था। उसने कभी सुकेशी के साथ बातचीत करने की चेष्टा नहीं की थी।

एक दिन उसके घनिष्ठ मित्र पार्थ को घर में ताड़पत्र की कोई पोथी मिल गई। नाम था—"कामाक्षा मंत्र और तंत्र।" पन्ने उलटते-पलटते वह नारी वशीकरण परिच्छेद में आकर अटक गया। राघव से सलाह की और दोनों शिवनाथ के पास आये। सुकेशी को पाने का सहज उपाय ढूंढ़ निकालने के कारण दोनों उत्साहित थे।

कक्षा में जाकर शिवनाथ ने पार्थ और राघव को मन्द-मन्द मुस्कराते देखा। उनकी मुस्कान की बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई, शिवनाथ होंठ भींचकर बैठ गया। सुकेशी बरामदे में थी, घंटा बजा नहीं था, अतः शिक्षक आये नहीं थे। थोड़ी देर बाद प्रधानाध्यापक आये और उनके पीछे-पीछे सुकेशी। उस दिन शिवनाथ का ध्यान पढ़ाई में न लगा। वह सुकेशी की बात सोचता रहा। विचारों में कब घंटा बज गया, उसे पता ही न चला।

छुट्टी के बाद वह स्कूल के अहाते से निकल ही रहा था कि एक जीप आकर फाटक के सामने रुकी। उसमें से सुकेशी के पिता गोविंदबाबू उतरे और तेजी से दफ्तर में घुस गये।

किताबें लिये हुए शिवनाथ अपने विचारों में तल्लीन स्कूल के फ़ाटक के बाहर आ गया। जीप के अंदर से किसी ने आवाज लगायी, "सुनना, सुनना···ओ ?" उसका ध्यान टूटा। झांककर देखा तो अंदर एक प्रौढ़ स्वामीजी बैठे थे। गैरिक वस्त्र, गैरिक चोला, हृष्ट-पुष्ट बदन और प्रभावशाली चेहरा। स्वामीजी अपरिचित लगे। शायद किसी और को बुलाया होगा, यह सोच शिवनाथ लौटकर चलने लगा, लेकिन पीछे से फिर ऊंचे स्वर में आवाज आयी, "मैं तुम्हीं को बुला रहा हूं।" इस बार उन्होंने हाथ हिलाकर बुलाया था। शिवनाथ पुनः जीप के पास

चला गया तो उन्होंने पूछा "तुम्हारा क्या नाम है, बेटा ?"

"शिवनाथ षड़ंगी ।"

"पिता का नाम मधुसूदन षड़ंगी है ?"

"मुझे पहचानते हैं ?"

"नहीं ।"

इस बीच गोविंद महापात्र लौट आये थे । साथ में सुकेशी भी थी । स्वामीजी को शिवनाथ के साथ बातचीत करते देखकर पूछा, "स्वामीजी, आपने शिवनाथ को कैसे पहचाना ?"

सुकेशी गोविंद महापात्र की बगल में अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को फाड़े विस्मित खड़ी थी ।

"मैं नहीं पहचानूंगा उसे ? पिता षड़ंगी के चेहरे की हूबहूं नकल दिखायी नहीं दे रही है तुम्हें ? एक बार मधु सपरिवार प्रयाग आया था । तब शिव बहुत छोटा बच्चा था ।"

शिवनाथ लज्जा और संकोचवश कुछ कह नहीं पाया, अपनी जगह चुपचाप खड़ा रहा । अचानक उसकी नजर सुकेशी की ओर उठ गई । आंखें चार होते ही उसका चेहरा लज्जा से लाल हो उठा । उसने मुंह नीचे की ओर कर लिया ।

"तब तो षड़ंगी से आपका अच्छा परिचय है ।"

संन्यासी ने मुस्कराकर कहा "यहां मेरे आने का एक उद्देश्य उसे देखना भी है । प्रयाग-यात्रा के बाद से ही वह मेरा शिष्य है ।" कहते-कहते संन्यासी की दृष्टि सुकेशी पर पड़ी और बोले, "तुम्हारे यहां यह एक लड़की ही तो है । वाह ! वाह ! बहुत सुंदर है । आ बेटी, पास की सीट पर । बैठ जा ।" उन्होंने सुकेशी को खींचकर एक सीट पर बैठा दिया । फिर शिवनाथ से कहा, "शिव, खड़े क्यों रह गये ? आओ, तुम भी यहां इसके पास बैठ जाओ ।"

गोविंदबाबू ड्राइवर के पास बैठे । सुकेशी के पास बैठते समय शिव ने, जितना संभव था, दूरी रखी, जीप चली तो वह बाहर देखने

लगा—पेड़, नाले, खेत और झोंपड़ियां अंदर। से जैसे उसे कुछ मतलब नहीं, और स्वामीजी कोमल स्वर में पूछ रहे थे, "सुकेशी, तुम दोनों क्या एक ही क्लास में पढ़ते हो ?"

स्वामीजी की बात ठीक से सुनने के लिए जब सुकेशी थोड़ा शिवनाथ के करीब आयी तो उसे रोमांच हो आया। सुकेशी ने संक्षिप्त-सी 'हां' कह दी और स्वामीजी की तरफ देखने लगी।

"अरे महापात्र ! ये दोनों तो अपरिचित की तरह गुमसुम बैठे हैं ! बात क्या है ?" एक-दूसरे को पहचानते नहीं हैं क्या ? स्वामीजी ने कहा।

"साथ पढ़ते हैं तो पहचानेंगे क्यों नहीं ?" कहकर महापात्र ने बात को फौरन दूसरी ओर मोड़ दिया, "सुकेशी को कटक भेजना कब ठीक रहेगा ? मेरा तो विचार है कि यह ग्यारहवीं की पढ़ाई कटक में ही करे। यहां उसकी पढ़ाई ठीक से हो नहीं पा रही है।"

"अभी तो दसवीं हो जाने दो। बाद में जैसी सुविधा हो, करना।"

"उसकी मां की भी यही इच्छा है।"

स्वामीजी ने पुनः सुकेशी और शिवनाथ की ओर देखकर कहा, "तुम दोनों चुपचाप बैठे हो, बातचीत नहीं कर रहे ?"

तभी ड्राइवर ने बायीं ओर गाड़ी को मोड़ा और सुकेशी शिवनाथ पर गिर पड़ी। उसका चेहरा एकदम सुर्ख हो गया।

जीप कोठी पर पहुंची तो पचासों आदमी दरवाज़े पर एकत्र थे। "हरे राम ! हरे कृष्ण !" के कीर्तन से बाहर का चौक गूंज रहा था। बरामदे से कोठी के अंदर तक जाने के लिए गलीचे बिछाये गये थे। स्वामीजी के स्वागत् के लिए इतना आडंबर ! शिवनाथ को आश्चर्य हो रहा था। जरूर प्रसिद्ध संन्यासी होंगे। दूर से भीड़ देख, जीप ठहरते ही सबकी नज़रों से बचकर चले जाने का उसने निश्चय कर लिया। पर साधु महाराज ने उतरते ही दोनों को साथ आने की आज्ञा दे दी। शिव सलज्ज भाव से स्वामीजी की दाहिनी बगल में जाकर खड़ा हो

गया। सुकेशी उनके दूसरी तरफ चली गयी। "हरि! हरि!" की ध्वनि से सारा चौक भर गया। लोगों ने साष्टांग प्रणाम किया। कुलवधुएं रोगी शिशुओं को ला-लाकर स्वामीजी के चरणों में रखने लगीं। स्वामीजी किसी-किसी को स्नेहपूर्वक दाहिने हाथ से सहला देते। कोई स्वामीजी के पैर टटोलते-टटोलते शिवनाथ के ही पैर पकड़ रोने लगती। एक वृद्धा उसके पांव पकड़कर सिर रखने लगी तो शिवनाथ का चेहरा स्याह पड़ गया। उसने दाहिने हाथ से स्वामीजी को इशारा किया तो वे थोड़ा हंसकर बोले, "चिंता न करो! ईश्वर को सब-कुछ अर्पण कर दो। ब्राह्मण बालक, तुम्हारा कोई अमंगल नहीं होगा।"

'हुलहली' (पवित्र ध्वनि) के बाद जमींदार की पत्नी और गांव के अन्य ऊंचे घरों की महिलाएं स्वामीजी की आरती उतारने आयीं। स्वामीजी शिवनाथ और सुकेशी के कंधों पर हाथ रखे खड़े हो गये। सुकेशी की मां वंदना कर जाने लगी तो स्वामी ने कहा "अरे, इन दोनों को छोड़ गयी!" वे लौटीं और दोनों की वंदना की।

शिवनाथ कोठी की तरफ देख रहा था और साथ ही यह अनुभव कर रहा था कि उस भीड़ में बहुत-सी आंखें उसे प्रशंसा की दृष्टि से देख रही हैं। कोठी के अंदर शिव कभी आया नहीं था। चारों ओर देखने की बलवती इच्छा होने पर भी साधु की उपस्थिति उसका सिर और आंखें नीचे किये दे रही थीं। लोगों की भक्ति और "हरि बोल" ध्वनि के बीच सुकेशी कुछ क्षण के ही लिए उसके मन से दूर हो गई थी।

सुकेशी भी गंभीरतापूर्वक सिर झुकाये चल रही थी। स्वामीजी के बलिष्ठ हाथ दोनों के कंधे का सहारा लिये थे। चौक पार करने के बाद थोड़ी दूर तक बगीचा और उसके बाद दाहिनी तरफ कोठी का अंतःपुर था।

"अरे महापात्र! तू तो राजे-रजवाड़ों-जैसे आडंबर से रह रहा है!"

"सब आपका आशीर्वाद है प्रभु। इस कमरे को पवित्र कीजिए, पधारिये!"

अचानक शिवनाथ को लगा कि उसकी उपस्थिति जमींदार और उनकी पत्नी को सुखद नहीं लग रही है। लेकिन केवल स्वामीजी के कारण ही वे कुछ कह या कर नहीं पा रहे हैं।

सुकेशी का सोने का कमरा !

"वाह ! राजकुमारी का प्रकोष्ठ ! स्वामीजी ने अत्यंत आग्रहपूर्वक कमरे में प्रवेश किया। उनके बाद सुकेशी के पीछे-पीछे शिवनाथ अंदर जाने लगा तो अनुभव हुआ कि कोई पीठ पर अंगुली दबाकर इशारे से मना कर रहा है। मुड़कर देखा तो जमींदार साहब क्रोध को रोके कुछ कहना चाह रहे थे। शिवनाथ सब समझ गया। वह अंदर न जाकर बरामदे में उतर आया, तभी साधु बाहर निकल आये और डांटने के स्वर में बोले, "इस तरह चले जाने पर तुम्हारे पिता हमारी बहुत प्रशंसा करेंगे ? चलो अंदर आओ ! बिना खाये कहां जा रहे हो ?"

अब जमींदार के लिए कहने को कुछ न बचा। पलंग पर गुलाबी रंग की चादर बिछी थी। साधु शिवनाथ को साथ लेकर बैठ गया। सुकेशी साधु की अर्चना में लग गयी। उसके प्रकोष्ठ से सटे कमरे को सजाने में सब जुटे हुए थे। स्वामीजी वहीं ठहराये जायेंगे।

चार

तीन-चार दिन बीत गये। वसुंधरा रसोईघर में थी। षड़ंगी का स्वास्थ्य पहले से अच्छा था। वह बाहर के कमरे में बैठकर कागज-पत्र देख रहा था। आराम-कुर्सी के पास एक छोटा-सा स्टूल था, जिस पर कागजों के बंडल रखे थे। नीचे दरी बिछी थी। दो गुमाश्ते हिसाब लिख रहे थे। शिवनाथ गणित कर रहा था। देवीपाद कटक के अपने किसी मित्र को पत्र लिखने में मशगूल था। उसके पास शिवानंद की

अंग्रेजी पुस्तक 'दिव्य जीवन' पड़ी थी। वाहर के इस कमरे और वच्चों के पढ़ने के कमरे के बीच झरोखा था ताकि वच्चों पर निगाह रखी जा सके और जरूरत पड़ने पर आवाज़ देकर किसी को वुलाया जा सके।

"षड़ंगी ! घर पर हो ?" स्वामीजी ने सीढ़ियां चढ़कर अपने साथ आये हुए महापात्र से कहा, "अब तुम लौट जाओ। घंटे भर बाद मुझे लेने के लिए आजाना।"

साधु की आवाज़ सुनी तो हड़वड़ी में उठकर षड़ंगी वाहर आ गया। उसके दुर्वल पैर कांप रहे थे।

"अहो भाग्य ! गुरुदेव ! आपके दर्शन !" उसने गुरु को साष्टांग प्रणाम किया और फिर वोला, "अरे शिव ! एक लोटा जल तो लाना।"

"वाहरे तेरी गुरुभक्ति ! चार दिन हो गये गांव में आये और तू मिलने के लिए एक वार भी न आ सका ! सुना है, अव तू वहुत बड़ा आदमी हो गया है !"

"शिव ने आकर मुझे सब वताया। किंतु क्या करूं, कुछ दिन से शरीर ठीक नहीं रहता। वहुत कमज़ोरी लग रही है। बार-बार सिर में चक्कर आते हैं, कहीं भी जाने को जी नहीं करता। आपके पास जाने की क्या मेरी इच्छा नहीं होती थी ? इच्छा हुई, मगर अंदर-ही-अंदर मर गई। अंत में सोचा कि यदि भक्त अपनी असमर्थता के कारण भगवान तक न जा सके तो क्या भगँवान उसके पास नहीं आयेंगे ? भगवान तो निर्दयी नहीं हैं।"

स्वामीजी उसकी बातों से प्रसन्न हो गये। देवीपाद सिर झुकाये पत्र लिखता रहा।

"कितनी संतान हैं तेरी, मधु ?"

"तीन पुत्र हैं, गुरुदेव !"

"शिवनाथ अंदर से पानी ले आया था। मधुसूदन के कहा, "शिव !

स्वामीजी के चरण धो।"

शिवनाथ ने स्वामीजी के चरण धोये।

"चिरायु हो।"

"महापात्र कह रहा था कि तूने बहुत धन-संपत्ति जमा कर ली है। कितना रुपया जोड़ा?" स्वामीजी की आंखें छोटी हो गई थीं। होंठों पर थोड़ी-सी हंसी खिल आयी थी।

षड़ंगी का मुंह लाल हो गया। बोला, "आप तो त्रिकालज्ञ हैं। आपसे क्या छिपा है?"

स्वामीजी की दृष्टि झरोखे से होकर देवीपाद की ओर गई। उन्होंने गंभीरतापूर्वक पूछा, "वह भी तेरा पुत्र है?"

"जी, महाराज!"

"आश्चर्य की बात है!"

इतने में दरवाज़े के पीछे से चूड़ियों की झनझनाहट सुनायी पड़ी। वसुंधरा गुरु-पूजन की प्रतीक्षा में अधीर हो गयी थी।

"ओह, गृहिणी! उसका धैर्य छूटा जा रहा है।"

साधु आरामकुर्सी से उठकर घर के भीतर की ओर चलते बोले, "चल, देखें, तेरा घर भी देख लें, कैसा सजाया है।"

गुरुदेव आगे और षड़ंगी पीछे चले। चौखट के पास स्वामीजी क्षण-भर ठिठक गये ताकि वसुंधरा प्रणाम कर पद-रज ले सके।

"सौभाग्य बना रहे।" कहते हुए गुरुदेव भीतर चले गये।

षड़ंगी कहता जा रहा था, "यह रसोईघर है, यह सोने का कमरा, यह मेरा, यह लड़कों का···"। शिवनाथ को आश्चर्य हो रहा था कि स्वामीजी निष्प्रयोजन इतने चकित क्यों हो रहे हैं? वे जो भी देख रहे थे, उसकी अनवरत प्रशंसा किये जा रहे थे, और कभी-कभी सुझाव भी देते जाते कि इस प्रकार सजाते तो और सुंदर होता। सारा घर घूम आने के बाद षड़ंगी के सोने के कमरे में आये। वहां एक गलीचा बिछा था, उस पर बिस्तर लगा था और दीवार से टिकाकर गोल तकिया

रखा हुआ था। यह सब देख "साधु के लिए! साधु के लिए!" कहते हुए स्वामीजी शिशु-सुलभ चपलता से बिस्तर पर बैठ गये।

"बैठो बच्चो! मेरे पास बैठो।"

अकेले शिवनाथ को बैठते देखकर स्वामीजी ने कहा, "अरे, अपने अन्य भाइयों को भी बुला। स्वार्थी कहीं का!"

देवीपाद तबतक स्वामीजी की अभ्यर्थना में नहीं आया था। स्वामीजी भी बच्चों का पढ़ने का कमरा देखने नहीं गये थे। शिवनाथ उठकर देवीपाद को बुलाने जाता, इससे पूर्व ही षड़ंगी ने कठोर स्वर में पुकारा, "देवी!" देवी को आया देख षड़ंगी ने क्रोध में भरकर पूछा, "क्या कर रहे थे? धर्म-दर्शन, मंत्र-तंत्र के फेर में पढ़ाई छोड़े बैठे हो और साधु-महात्मा के घर आने पर स्वागत-सत्कार करने जितनी सज्जनता भी नहीं!"

"आओ बेटे! आओ!" स्वामीजी ने कोमल स्वर में उसे आश्वासन दिया।

देवीपाद ने, पिता या गुरु किसी की बात न सुनी हो, इस तरह भंगिमा बनाकर, गुरु के चरण स्पर्श किये।

स्वामीजी ने पूछा, "तृतीय कहां है?"

"सबसे बड़े ने तो कटक में दवाइयों की दुकान खोल ली है।"

"ओहो! अच्छा, जलपान लाओ।"

वसुंधरा शीघ्रतापूर्वक रसोई में गई और जलपान ले आयी। स्वामीजी ने बड़ी फुर्ती से सबकुछ समाप्त कर हाथ धो लिये। फिर गंभीर होकर चारों ओर देखने लगे। स्वामीजी के इस आचरण पर षड़ंगी के अलावा सबको आश्चर्य हुआ, परंतु षड़ंगी तो प्रयाग में दीक्षा लेते समय ही गुरु के आचार-व्यवहार से परिचित हो गया था, अतः उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

"गुरुदेव! मेरा एक अनुरोध है।" अंत में षड़ंगी ने हाथ जोड़कर कहा।

"कहो ! कहो ! हृदय खोलकर कहो ।" पान का बीड़ा मुंह में डालते हुए संन्यासी ने अनुमति दी ।

"संतान को लेकर मैं हमेशा चिंतित रहता हूं । मेरे बाद क्या होगा ? कैसे चलेंगे ? इनमें परस्पर स्नेह, सहानुभूति रहेगी या नहीं, यही चिंता खाये जाती है ।" षड़ंगी ने थोड़ा रुककर फिर निवेदन किया, "आप कृपाकर इनकी जन्मपत्री देख लेंते । आपसे बड़ा ज्योतिषी देश में कोई है नहीं । आपके मुखारविंद से इनका भविष्य सुनकर मैं निश्चित हो जाऊंगा ।"

"तो ले आओ । तुम्हारे पुत्रों का भविष्य जानने की मेरी भी इच्छा है । जानना चाहता हूं कि पिता का अतीत अपनी संतान के भविष्य को कितनी दूर तक प्रभावित कर सकता है ।"

वसुंधरा जन्मपत्रियां लाने सोने के कमरे की ओर चली गयी । स्वामीजी ने देवीपाद की ओर देखकर पूछा, "कहां थे, बाबू ?"

"पढ़ाई के कमरे में ।"

"क्या कर रहे थे ?"

"चिट्ठी लिख रहा था ।"

तभी वसुंधरा जन्मपत्रियां ले आई और बात वहीं रुक गयी ।

"कागज-कलम लाओ, विना गणित किये मैं फलाफल नहीं कह सकूंगा । क्या मैं गांव के शिक्षक की तरह चालाक हूं ?" स्वामीजी ने कहा ।

वसुंधरा कागज-पेंसिल के लिए पढ़ाई के कमरे की ओर दौड़ गयी । इधर पुलिंदे में से स्वामीजी ने एक जन्मपत्री निकाली और बोले, "देखें, किसका भाग्य खुल रहा है !" जन्मपत्री को उलट-पुलटकर पढ़ा, "श्रद्धानाम—देवीपाद षड़ंगी । बेटे, तुम्हारी है ।" साधु देवीपाद के मुंह की ओर देखकर हंस पड़े ।

"पहले इसी की देखिए ।" वसुंधरा ने चौक में खड़े-खड़े कहा ।

बरामदे में देवी, शिव और षड़ंगी स्वामीजी के पास बैठे थे । ताड़-

पत्रों से कैसे किसी के भविष्य का पता चलता है, इस बात से विस्मित देवीपाद और शिवनाथ स्वामीजी द्वारा बताये जाने वाले फलादेश की उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। कभी-कभी शिवनाथ का उद्वेग प्रकट हो जाता था, पर देवीपाद बाहर से नीरव, निस्पंद और निश्चल था। स्वामीजी कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींच रहे थे। पुत्रों के भाग्य को जानने की प्रतीक्षा में षड़ंगी साधु के मुख-मंडल को भक्ति-विह्वल होकर देख रहा था।

अन्त में निःस्तब्धता तोड़ते हुए साधु ने कहा, "बेटा देवी! इधर आओ।" उनके मुंह से यह सम्बोधन देवी को थोड़ा अखरा, पर वह साधु के समीप आ गया। उन्होंने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "षड़ंगी, इस पुत्र का विशेष ध्यान रखना। इसकी कुंडली में प्रव्रज्या और महाभोग दोनों योग हैं। मुख से हरिनाम और बगल में नित्य षोड़शियां, यही इसकी कुंडली की विशेषता है।"

"आप तो असंगत बातें करने लगे।" षड़ंगी ने कहा।

"चुप रहो! फलाफल बताते समय मैं कभी हास-परिहास नहीं करता।" इतना कह चुकने के बाद स्वामीजी का स्वर बदल गया। रुक-रुककर कहने लगे, "संसार में सबकुछ संभव है। आकृति देखकर भी मैं आदमी का चरित्र और उसका भाग्य थोड़ा-बहुत जान लेता हूं। तुम्हारा यह पुत्र जब पढ़ाई के कमरे में चिट्ठी लिख रहा था तो मैंने इसकी और भी विशेषताएं देखीं और इसीलिए इसकी जन्मपत्री देखने को राजी हो गया। घटनाओं के फेर में पड़ने से पूर्व प्रत्येक मनुष्य अत्यंत साधारण दिखायी पड़ता है। उसी प्रकार देवीपाद भी लाखों-करोड़ों की तरह एक सामान्य जन है। किंतु एक समय आयेगा जब जैसा उसने और किसी ने भी सोचा न होगा, वही घटना घटित हो जायेगी। यह संसार बड़ा अद्भुत है।"

स्वामीजी सहसा चुप हो गए और दुःखी होकर निर्निमेष भाव से आकाश की ओर देखने लगे। उनकी इस भंगिमा ने सभी को आतंकित

कर दिया। किंतु देवीपाद इसे छलावा समझ वहां से चला गया। उसके यों जाने से किसी के ध्यान में बाधा नहीं पड़ी। सब यह जानने को विकल थे कि स्वामीजी क्या कहना चाह रहे थे और चुप हो गये।

"स्वामीजी ! और क्या ?" अंत में षड़ंगी ने व्याकुल होकर पूछ ही लिया।

"तुम्हारे कुल का सारा पाप यही पुत्र अपने कंधों पर ढोकर तुम सबका उद्धार करेगा; किंतु इसके लिए, मधु, तुम्हें बहुत कष्ट सहना पड़ेगा।"

"मतलब ?" षड़ंगी का भयमिश्रित स्वर मानो समुद्र की अतल गहराइयों से उभरकर ऊपर आया हो।

"तुमने अपने जीवन में जो पाप किये हैं, सब इसके जीवन में फलेंगे, सबको यह भोगेगा। हां, एक भाई कुछ हिस्सा बंटा सकता है।"

"गुरुदेव !" षड़ंगी आर्त स्वर में विलख उठा।

"बस ! मैं और कुछ नहीं कह सकूंगा। मेरा समय हो गया, मैं चलता हूं।" स्वामीजी खड़े होकर जन्मपत्रियों का बंडल एक ओर रख बाहर चले गए। वसुंधरा हक्की-बक्की देखती रह गयी।

"स्वामीजी ! स्वामीजी ! और थोड़ा स्पष्ट करते जाइये !" उनके पीछे जाते हुए षड़ंगी की व्याकुल पुकार सुनायी दी। बाहर के दरवाजे पर रुककर उन्होंने षड़ंगी के कानों में कुछ कहा, जिसे सुनकर षड़ंगी के चेहरे का रंग स्याह पड़ गया। "हे भगवान् !" वह कह उठा और उसकी आंखें अस्वाभाविक रूप से फैल गयीं। षड़ंगी को उसी अवस्था में छोड़कर स्वामीजी चले गये। वह बरामदे में बैठ गया। स्वामीजी की बात याद हो आयी—पिता के कर्म पुत्र के भाग्य में फलते हैं। धन-संपत्ति की तरह पिता का पाप भी पुत्र बांटते हैं। देवी···! षड़ंगी का हृदय हाहाकार कर उठा—नहीं···नहीं···देवी इस तरह का कभी न होगा, कभी नहीं ! असंभव ! पिता का पाप···

बहुत दिन पहले की बात है।

सोलरी पहाड़ के पीछे से जिस तरह सूर्य उदय होता है ठीक उसी तरह विस्मृति के गर्भ से वह घटना षड़ंगी को याद हो आयी। यौवनावस्था की उच्छृंखलता असाध्य होती है। वसुंधरा सुंदरी थी, उसका अंग-अंग सांचे में ढला लालसा को प्रदीप्त करता और ललचाता था। पर पांच ही वर्ष में प्रथम संतान होने के बाद उसकी रूपश्री मुरझा गयी। मुरझायी हुई पत्नी को प्यार करने की उसने लाख चेष्टा की, पर वसुंधरा से उसका मन हटता गया। रूप-यौवन की तृष्णा के साथ जीवन का दर्शन भी बदलता गया। वह सोचता—ईश्वर-प्रदत्त इस शक्ति का प्रयोग न कर संयम रखने से क्या लाभ? फिर भगवान् ने पौरुष और शक्ति दी ही क्यों?

यौवन को शराब के प्याले की तरह एक ही बार में पी जाने वाले कई दुःसाहसी दोस्त भी षड़ंगी को इसी समय मिल गए।

मुहल्ले के पीतांबर रथ अकेले रहते थे। एक दिन "विवाह करने जा रहा हूं" कहकर गंजाम की तरफ चले गये। तीन दिन बाद लौटे तो साथ में सत्रह वर्ष की सुंदर पत्नी थी। "यह सारसी मेरी पत्नी है। खलीकोट के एक गरीब ब्राह्मण ने कन्यादान किया है।" गांव लौटकर पीतांबर ने केवल इतना बताया। कोई अधिक जानने की चेष्टा करता तो पीतांबर काम का बहाना कर वहां से उठकर चले जाते। अपनी तरह के बड़े जिद्दी स्वभाव के आदमी थे। न वे किसी के यहां जाते और न कोई उनके घर आता। लेकिन विवाह के बाद अनचाहे भी जब लोग उनके घर आने लगे तो उन्हें बुरा लगना स्वाभाविक था।

सारसी के आने के बाद पीतांबर के घर का रूप ही बदल गया। धीरे-धीरे घर का भीतर-बाहर सबकुछ सुचारु और नियमित हो गया। साग-सब्जियां घर के पीछे लहलहाने लगीं। सामने चौक में कई तरह के फूल खिल उठे। गांव के लोग पीतांबर की स्त्री का सौंदर्य, शील और गृहकार्य में निपुणता देखकर अचम्भा करते। कुछेक ईर्ष्या के मारे

जलते भी थे। सारसी का रूप तो नित्य ही देखने को मिलता था। गरीब का घर ठहरा, अतः तलैया से पानी लाना, लिपाई-पुताई आदि सारे काम करने पड़ते थे। कभी कोई आ जाता तो उससे बात भी करनी पड़तीं, वह 'असूर्य-पश्या' तो रह नहीं सकती थी। उसे इस सबसे कोई ग्लानि न थी। पति-सेवा और गृह-कार्य को कर्त्तव्य मानकर निंदा-स्तुति सब सुनते हुए वह पीतांबर के घर का कार्य और एकनिष्ठ भाव से पीतांबर की सेवा करती थी। धीरे-धीरे उसकी चंचल आंखें, हल्दी-जैसा रंग, तीखी नासिका, उभरे हुए उरोज और सुराही-सी गर्दन, गांव के अन्य युवकों की तरह, मधुसूदन की आंखों में भी चढ़ गयी। कई बार देखने के बाद मधुसूदन को अंदर-ही-अंदर आकुलता का अनुभव होने लगा। कालांतर में, अनिच्छा से भी, कई बार सारसी को रास्ते में आते-जाते देखने का सिलसिला शुरू हो गया। अचानक कभी सारसी से भेंट हो जाती तो बहुत घबड़ा जाता और मन-ही-मन अपने उद्देश्य की पूर्ति का उपाय सोचने लगता।

एक दिन वसुंधरा को योंही उसके पीहर छोड़कर लौटा तो यह शुभ समाचार सुनने को मिला कि पीतांबर नौकरी के लिए कलकत्ता चले गए हैं और सारसी घर में अकेली है। षड़ंगी स्तब्ध रह गया; आनंदातिरेक से उसे रोमांच हो आया। चिड़िया को फंसाने के नित नये उपाय सोचने लगा। इस तरह दस-बारह दिन बीत गए। उस दिन सुबह से ही आकाश मेघाच्छन्न था और ठंडी-ठंडी हवा बह रही थी। रिमझिम-रिमझिम वर्षा भी हो रही थी। आखिर उसने हिम्मतकर सारसी को पत्र लिखा :

"प्रिये,

मैं एकांत हरिण विरह वाडवानल में घिरकर जल रहा हूं। तुम्हारे उपवन का हरिण होकर रहने की इच्छा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। तुम्हारा सहारा मिले तभी यह कामाग्नि बुझेगी। तुम-जैसी सुंदरी इन आंखों ने नहीं देखी और शायद कभी

कोई दीखेगी भी नहीं। धन-जन गौ-लक्ष्मी सबकुछ होते हुए भी मैं कितना दरिद्र हूं और यौवन रूप से मंडित तुम कितनी ऐश्वर्यवान हो ! वैभवशाली लोग दान करते हैं। महादानी कर्ण और हरिश्चन्द्र ने दूसरों के सन्तोष के लिए सर्वस्व लुटा दिया। सौंदर्य क्या सबसे बड़ी सम्पत्ति नहीं है ? मैं सर्वहारा हूं, प्रिये ! मुझे भिक्षा दो—दान दो···"

जोरदार वर्षा हो रही थी। सभी लोग अपने दरवाजे-खिड़की बंद किये बैठे थे। चिट्ठी समाप्त करने के बाद षड़ंगी का हृदय जोरों से धड़कने लगा। जवान सूख गयी। बदन कांपने लगा। किसी तरह घर से निकलकर पीतांबर के बरामदे में पहुंचा। चोर की तरह चारों ओर देखकर उसने बाहर का दरवाजा धीरे से थपथपाया। दो क्षण में ही दरवाजा खुल गया। सारसी ने षड़ंगी को देखते ही सिर पर पल्लू खींच लिया। उसे अपने दरवाजे पर देखकर सारसी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कुछ कहेगा, इस प्रतीक्षा में वह दीवार के सहारे खड़ी हो गई। कुछ समय इसी तरह बीत गया। जोर की बौछार आयी और वर्षा का पानी बरामदे के पार खुले दरवाजे के अंदर तक गीला कर गया। षड़ंगी कुछ कह नहीं पा रहा था। सारसी ने धड़कते दिल से बरामदे के बाहर झांका कि कोई देख तो नहीं रहा है। फिर उसने कनखियों से षड़ंगी की ओर देखा तो वह जा चुका था। उसके वहां आने के साक्षी-स्वरूप एक पत्थर के नीचे दबा कागज का टुकड़ा सारसी के पांवों के पास पड़ा था। उसने घूंघट हटाकर कागज उठा लिया और भीतर जाकर दरवाजा बंद कर लिया।

षड़ंगी कैसे पीतांबर के घर से लौटा, स्वयं उसे ही पता नहीं। आते ही बाहर बरामदे में पड़ी आरामकुर्सी पर धमाक से लेट गया। डर और चिंता के मारे सांस जोर-जोर से चलने लगी। रह-रहकर यही खयाल आता, क्यों इतनी बड़ी भूलकर बैठा ? अगर उस छोकरी ने चिट्ठी किसी को दिखायी तो कितनी बदनामी होगी ! क्षणिक दुर्ब-

लता का कैसा भीषण परिणाम होगा ! फिर खयाल आया, चिट्ठी के नीचे दस्तखत तो नहीं किये हैं और न सारसी को संबोधित ही किया है। सिर्फ 'प्रिये' ही तो लिखा है। दुख:दायी विचारों से मुक्त होते ही उसे नींद आ गयी।

वर्षा का वेग बढ़ता गया। दोपहर में भी रात जैसा अंधेरा छा गया। सहसा षड़ंगी को लगा, जैसे कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है। उसकी नींद खुल गयी। जोर से बादल गरजे। धड़कते कलेजे से वह उठा और कान देकर सुनने लगा। फिर ठक-ठक की आवाज़ आयी। आशंका में भरकर उसने किवाड़ खोले। अंधकार में कुछ दीख नहीं रहा था, फिर भी उसने देखा कि ठंडी हवा और वर्षा की बौछार के साथ सारसी घर के भीतर आ गयी है। उसने घबराकर दरवाजा बंद कर लिया। अंधेरे में सारसी दिखायी नहीं दी, दरवाज़े के पास केवल उसकी आवाज़ सुनायी दी, "आपने चिट्ठी लिखी ?"

षड़ंगी मौन !

"मेरे पति यहां नहीं हैं। आप धनवान् हैं, इसलिए इतनी हिम्मत ! क्या धर्म भी याद नहीं रहा।

षड़ंगी फिर भी निरुत्तर। पता नहीं, क्या हो गया कि जवाब ही नहीं सूझा।

सारसी ने फिर कहा (किंतु इस बार उसकी वाणी में वह जोर न था) "आप इतने बुरे हो सकते हैं, देखकर कोई अनुमान भी नहीं कर सकता। आप विवाहित हैं, पिता हैं, फिर भी"...हठात् जाने क्या हुआ कि वह बोल उठी, "ओह ! मैं आपके घर आयी ही क्यों ! अगर उस चिट्ठी को गांव की पंचायत में पेश कर दूं...।"

और उस दिन सारसी उलटे पांव ही नहीं लौट गयी। जब षड़ंगी का दरवाज़ा खुल तो बहुत समय बीत गया था, पानी तब भी जोरों से बरस रहा था और अंधेरा और घना हो गया था। उस दिन के बाद भी वे कई दिनों तक लुक-छिपकर मिलते रहे।

ग्राठ महीने के वाद षड़ंगी ने सुना कि सारसी के बेटा हुआ है। पुत्र को देखने के लिए पीताम्बर कलकत्ते से गांव आये थे। ग्रानंद से उसका नाम रखा गया यादव किशोर। लेकिन लोगों ने उसे किशोर ही कहा और वह बचपन से पागल था।

पांच

"मां, स्वामीजी ने क्या बताया ?" बहुत देर की जड़ता को तोड़ते हुए शिवनाथ ने पूछा।

वसुंधरा ने प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करते हुए कहा, "कुछ नहीं। कोई खास बात नहीं।"

"भैया की जन्मपत्री में ऐसा क्या था, जिसे बताने से उन्होंने इंकार कर दिया ?"

"भगवान ही जाने !"

उसके बाद शिवनाथ पढ़ाई के कमरे की ओर चला गया। षड़ंगी बाहरी बरामदे से भीतर आकर अन्दरवाले बरामदे में बैठ गया। उसका मुंह सूख गया था, शरीर कांप रहा था, गले में कांटे उठ रहे थे।

"क्या बात हुई ? स्वामीजी क्या कह रहे थे ?" वसुंधरा ने धीरे से पूछा।

"वसुंधरा, तुम्हें एक बात कहनी है। बहुत दिनों से सोचता रहा हूं कि तुमसे क्षमा मांग लूं, किन्तु चेष्टा करके भी कह नहीं पाता। आज कह ही दूंगा। तुम क्षमा कर सकी तो मेरे सब पाप धुल जायेंगे। वह कसूर मैंने और किसी के प्रति नहीं, तुम्हारे प्रति किया है। तुमसे द्रोह किया, लग्नमंडप में जो प्रतिज्ञा की थी उसका उल्लंघन किया। मैंने…।

कहते-कहते षड़ंगी की निगाह सहसा वसुंधरा की ओर उठ गयी। वहां सहानुभूति, करुणा या आर्द्रता का लेश भी न था। एक कठोर मनोभाव चेहरे पर छाया था। पति का कोई गहन रहस्य उद्घाटित होने जा रहा है, उसी से उत्पन्न हिंस्र आनन्द या विजेता का दर्प दीपित हो रहा था।

षड़ंगी का स्वर एकदम बदल गया। पश्चात्ताप की अनुनय-भरी दीन वाणी सिंह की दहाड़ बन गयी। गरज उठा, "पानी का गिलास लाना!" जोर से चिल्लाने के कारण सिर-दर्द शुरू हो गया।

वसुंधरा ने पानी ला दिया। पूछने लगी, "क्या कह रहे थे? बीच में ही रुक गये? क्या बात थी?"

"मुझे इतनी पूछताछ अच्छी नहीं लगती। तुम अभी चली जाओ यहां से।"

वसुंधरा चली गयी।

षड़ंगी ने कुछ देर बाद सिर दबाते हुए आवाज़ लगायी, "देवी! देवी! देवी! कहां मर गया?"

"भैया शायद बगीचे की ओर गये हैं।" शिव ने बताया।

"चाण्डाल की घूमने की आदत नहीं गयी। वही तो मेरा ग्रह बना हुआ है। किया क्या जाये? निस्तार भी तो नहीं।" और षड़ंगी सोने चला गया।"

दिन के बारह बजे होंगे। कड़ी धूप सबको व्याकुल किये दे रही थी। रविवार के दिन षड़ंगी के घर जल्दी खाना-पीना समाप्त नहीं होता। इस दिन मांस-मछली बनती थी। रविवार होने के कारण वसुंधरा सादा ही खाती, देवीपाद भी नहीं खाता, बाकी सब खाते। खाने के बाद देवीपाद रोज माली वाले कमरे में चला जाता। बगीचे के साज-सामान से वह कमरा भरा रहता था। बरामदे में बेंच और त्रिपाल के टुकड़े हमेशा पड़े रहते। कभी कोई वहां जाता तो उस पर बैठकर या सोकर हवा खाता था। इधर तो देवीपाद के सिवा वहां कोई जाता

नहीं था ।

वगीचेवाले कमरे में लेटे-लेटे देवीपाद ने आंखें मूंद लीं। परंतु कान के पास जोरों की गुदगुदी होने लगी तो वह उठ बैठा। देखा तो पीछे स्नेह हाथ में कबूतर पकड़े खड़ी थी—आंखों में शैतानी और होंठों पर हंसी।

"क्यों देवी भाई, गुस्सा हो गये ?"

"तुम कब आयीं ? आज इतनी जल्दी ?"

"तुम्हें देखकर मैं तो डर गयी। वड़ा डर लगता है तुम्हारे गुस्से से। बाबाजी आदमी जो ठहरे !"

"पहले यह तो वता कि आज इतनी जल्दी आना कैसे हो गया ?"

"तो मैं चली जाती हूं।"

"जाओ, यहां ठहरने के लिए मैं तुम्हें बाध्य नहीं करूंगा। अपने आराम से पांव पसारकर सोऊंगा।"

"तव मैं नहीं जाती। यहीं रहूंगी।"

देवीपाद बेंच पर आंखें मूंदे पड़ा रहा।

"तुम्हारे घर कोई साधु आये थे। सुना कि अच्छी गणना करना जानते हैं। मुझे बताया होता तो मैं भी अपना हाथ दिखाती। बहुत कुछ बताया है तुम लोगों के बारे में।"

देवीपाद उसी तरह चुप पड़ा रहा।

"तुम्हारी मनोकामना कब पूरी हो रही है, बताओ न ?"

"मेरी जन्मपत्री उन्होंने देखी जरूर, पर क्या कहा, मुझे नहीं मालूम।"

"जरूर अच्छी बातें बतायी होंगी।"

"शायद, हां।"

'क्या बताया ?"

"बोले, मेरे प्रव्रज्या योग के साथ बहुनारी-भोग का योग भी है।"

"क्या कहा ?"

देवीपाद ने अन्तिम वात धीरे से कही थी और स्नेह ने सुन भी ली थी, फिर भी साफ-साफ सुनने की इच्छा के कारण दृढ़ स्वर में पुन: पूछा, "क्या वताया। प्रव्रज्या और···"

"वहुनारी-भोग।"

"असभ्य! ऐसी वात कहते उन्हें शर्म नहीं आयी? संन्यासी होकर तुमसे ऐसी वात उन्होंने कही? मौसा और मौसी भी वहीं थे?"

"स्नेह!"

"स्नेह क्या? लोगों के सामने साधु कहायेंगे, और सारी गंदगी मन में भरे घूमेंगे! वे जव कह रहे थे, तुम चुप वैठे रहे? कुछ प्रतिवाद नहीं किया?"

देवीपाद चुप रहा। थोड़ी देर वाद जव स्नेह का भावावेग कम हुआ तो उसने पूछा, "अच्छा, और क्या कहा?"

"और भी कुछ पिताजी के कान में चुपचाप कह दिया, हममें से किसी ने नहीं सुना! पर तुम सुनकर इतनी विचलित क्यों हो गयीं?"

स्नेह ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वोली, "मैं जानती हूं, और क्या कहा होगा।"

"वताओ।"

"जीवन के सारे भोग और योग समाप्त कर तंत में उन्हीं वावाजी के आश्रम के उत्तराधिकारी होगे तुम। संभवत: जैसे गुरु वैसे ही शिष्य।"

"छोड़ो उस वात को। तुम अपनी कहो। सुना है, तुम्हारे घर में विवाह की तैयारियां वड़े जोरों पर हैं।"

"क्या सदा कुंवारी रहती? न कोई रहेगा।"

स्नेह की वात सुनकर देवीपाद अपराधी की तरह चुप हो गया। थोड़ी देर वाद पूछा, "आज क्या पढ़ाई की?"

"कुछ नहीं पढ़ा। पढ़ूंगी भी क्या? तुम आये तो ऊंघ रही थी।" स्नेह वहुत देर से खड़ी थी, अव वैठ गयी।

"स्नेह, आज तुम लौट जाओ। मुझे बात करना अच्छा नहीं लगता। एकांत चाहता हूं। कुछ सोचना चाहता हूं।"

स्नेह खड़ी हो गयी। बोली, "तुम्हारे बगीचे में आयी, इसीलिए तो तुमने यह बात कही। चली जाऊंगी। क्या कभी जबर्दस्ती रही हूं? तुम चाहो तो धक्का देकर भी निकाल सकते हो। उस अधिकार का भी प्रयोग कर लो। ठीक है, मैं चली।"

देवीपाद ने उत्तर नहीं दिया। पैर पर पैर चढ़ाये, आंख मूंदे पड़ा रहा। स्नेह को सचमुच गुस्सा आ गया था। कुछ दूर तक चली भी गयी; परन्तु बाद में उसकी गति स्वतः रुक गयी। जिस देवीपाद को बचपन से देखती आयी उसमें आज परिवर्तन की आशा वह कैसे कर सकती है? हृदय उसका पत्थर की तरह कठोर, निर्दय और बालू की तरह शुष्क है। कभी किसी की खुशामद नहीं करता, अनुनय-विनय तो जानता ही नहीं। इस बारे में और कोई जाने या न जाने, स्नेह अच्छी तरह जानती है। बचपन से वह देवी के साथ खेलती आयी है। पास में जाने पर आदर करेगा, स्नेह करेगा, परन्तु गुस्सा आने पर धकेल भी देगा। खुशामद तो जानता ही नहीं। सबकुछ करेगा, पर निर्लिप्त भाव से। स्नेह को लगता, देवी उसे प्रेम नहीं करता। शायद किसी को नहीं चाहता। सोचकर स्नेह को, उसपर क्रोध हो आता। फिर सोचती, अब अपने को संयत रखूंगी। किन्तु देवी के सामने जाते ही वह सबकुछ भूल जाती; देवी का व्यक्तित्व मानो उसे प्रेम करने के लिए बाध्य कर देता।

स्नेह लौट आयी। बोली, "देवी भाई, क्या फिर गुस्सा हो गये? बात नहीं करोगे?"

देवी स्नेह की उपेक्षाकर किताब पढ़ने लग गया।

"यह कौन-सी किताब है?"

"निगमानंद की जीवनी।"

"क्या निगमानंद भी तुम्हारे घर आये साधु की तरह के बाबाजी हैं?" देवीपाद गुस्से में भर कर स्नेह की तरफ मुड़ा। स्नेह सचमुच

देवी के गुस्से से डरती थी। उसकी लाल आंखें देखकर बोल उठी, "देवी भाई, मुझसे भूल हो गयी। माफ करना। मैं जाती हूं।"

"स्नेह, साधु-संन्यासियों का आदर करना सीखो।"

कुछ समय बाद साहस बटोरकर स्नेह ने पूछा, "क्या अच्छी पुस्तक है ?"

देवीपाद ने पुस्तक स्नेह के हाथ में थमा दी और कहा "लो, पढ़ो इसे।"

स्नेह पुस्तक के पन्ने उलटने लगी। फिर बोली, "बाप रे, इतनी मोटी किताब ! मैं नहीं पढ़ सकूंगी। मुझे तो सारांश में ही सारी बात बता दो।"

"सब समय सारी बातें सारांश में नहीं कही जातीं।"

"फिर भी···।"

देवीपाद चिढ़ गया। बोला, "अच्छा, सुन सारांश—"निगमानंद ने विवाह किया ! पत्नी उनकी स्वर्ग की अप्सरा और गुणों में सावित्री थी। दोनों में परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था। एक दिन निगमानंद विदेश में थे। रात का समय। अचानक उन्हें दिखायी पड़ा कि पत्नी खिन्न मुख दरवाजे पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही है। मन में चिंता पैदा हो गयी। छुट्टी लेकर घर आये। पहुंचते ही सुना कि उनकी प्राणप्रिया इस लोक में नहीं है। विरहाग्नि में वे संन्यासी तो हो गये, किन्तु प्रतिक्षण पत्नी के लिए तड़पते रहे। जो मर गया, वह क्या लौटकर आयेगा ? जीवितावस्था में जो "हे नाथ, मैं तुम्हारी, सिर्फ तुम्हारी हूं।" ऐसा हजार बार स्पर्श कर कहती थी, मरने पर क्या वह अपनी होकर रह सकती है, वह शरीर तो जल-भुनकर राख हो जाता है। निगमानंद को उनकी पत्नी तो नहीं मिली, किन्तु वेदांत का ज्ञान अवश्य मिल गया। उन्हें अनुभव हो गया कि स्त्री, पुत्र, संसार सब मिथ्या है, सब अहंकार की अभिव्यक्ति है। सब व्यर्थ आसक्ति है। अंत में उन्हें शांति मिली।" देवीपाद ने समाप्त करते हुए पूछा, "सुन लिया सारांश ? समझ गयीं ?"

स्नेह कुछ देर सोचती रही, फिर -बोली, "हां, समझ गयी। किन्तु आग लगे उस शांति को, धिक्कार है उस सूझ को, उस बुद्धि को ! बच्चों की-सी बुद्धि रखकर वे कैसे तो संन्यासी हुए ?"

"हुए क्यों नहीं ?" देवीपाद गुस्से में उठ बैठा, किन्तु स्नेह की छल-छलायी आंखें देखकर शांत हो गया।

स्नेह ने पूछा, "सब मिथ्या कैसे है ? एक दिन वे पत्नी को सबसे अधिक चाहते थे। एक बार जो सत्य है, मृत्यु या वियोग के बाद भी उतना ही सत्य रहेगा। शांति पाने के लिए जो एक बार सत्य था, उसे मिथ्या कहने की क्या जरूरत ? जिसे प्राणाधिके कहते थे उसे मिथ्या कहना, उनके हृदय ने कैसे स्वीकर कर लिया ?"

"तुम अपनी बुद्धि की मलिनता के कारण यह सब नहीं समझ पाओगी। वे पत्नी को चाहते थे इसीलिए तो उन्हें इतना कष्ट हुआ। जो सुख अस्थायी हो और जिसका परिणाम हजार गुना अधिक दुःख हो, वह सुख क्या सुख है ?"

स्नेह देवीपाद के तर्क को समझी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। उसने एक दीर्घ सांस छोड़ते हुए पूछा, "सच, कितना दुःख उन्हें हुआ ! आदमी जो चाहता है, नहीं पाता, कभी भाग्य से मिल भी जाये तो हमेशा उसके पास ठहरता नहीं।"

देवीपाद ने फिर बेंच पर फैलकर बैठते हुए कहा, "इसीलिए तो दार्शनिकों का कहना है कि भावुकता सब दुःखों का कारण है। मानव बुद्धिमान होकर संसार कें तत्व को समझे तो सब दुःखों का अंत हो जायेगा।"

"होता होगा। किंतु कितनी इच्छा होती है कि जो जिसे चाहता है, प्रतिक्षण जिसे अपने मन में संजोये हुए है, हृदय का रक्त सींच-सींचकर जिसका पोषण करता है, वह प्राप्त हो। और पाने के बाद वह उसीका या उसीकी होकर रहे, सदा के लिए, और यदि अगला जन्म संभव है तो उस जन्मांतर में भी।"

"सब आदमियों की सब इच्छाएं अगर फलने लग जायें तो संसार में कितनी विश्रृंखलता फैल जायेगी, यह भी सोचा है ?"

"बेकार बात है। कुछ विश्रृंखलता नहीं होगी। मैं तो इतना ही जानती हूं कि जो मैं चाहती हूं, उसे दूसरा कोई नहीं चाहता; और चाहे तो भी मेरी तरह नहीं चाहेगा—चाह सकता ही नहीं।"

देवीपाद हंस पड़ा।

छह

घंटी बजी कक्षा आरंभ हुई। शिक्षक के साथ सुकेशी अंदर आई। शिवनाथ ने तृप्त भाव से उसकी ओर देखा। सुकेशी भी उसी की ओर देख रही थी। शिवनाथ ने अपनी कापी पर नजर झुका ली। कुछ समय बाद फिर देखने की इच्छा हुई। मन में लगा, शायद सुकेशी देख रही होगी; संदेह हुआ, न भी देख रही हो। शिवनाथ ने सिर उठाया। ठीक उसी समय सुकेशी ने भी सिर उठाया। आंखें फिर चार हुईं।

उनके अनजाने ही और भी दो व्यक्ति उनकी भाव-भंगिमा को देख रहे थे। पार्थ ने सोचा, बात करने से तो शिक्षक देख लेंगे, अतः राघव की नोटबुक खींचकर लिखने लगा, "बात क्या है ? क्या वे परस्पर देख रहे हैं ?"

राघव ने लिखा, "समझ में नहीं आ रहा, सुकेशी तो कभी शिव को देखती नहीं थी। आज तो खूब आंखों की लड़ाई चल रही है !"

छुट्टी का घंटा बजने के बाद अहाता पार करते हुए पदचाप सुनकर शिवनाथ ने सिर घुमाकर देखा तो सुकेशी उसकी तरफ चली आ रही थी। शिवनाथ रुक गया।

पास आकर सुकेशी ने उलहने भरे स्वर में कहा, "आप कल घर की

तरफ नहीं आये ? मैंने आपकी बहुत प्रतीक्षा की ।"

शिवनाथ आश्चर्य में डूब गया । सुकेशी के घर फिर जाना चाहिए । यह तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था । वह तो इसी में संतुष्ट था कि जितना सान्निध्य सुकेशी का मिला वही यथेष्ट है । परंतु सुकेशी के इस मधुर उपालंभ ने उसे अवाक् कर दिया । तो सुकेशी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी ?

"आप पिताजी से डरते हैं ? नहीं-नहीं, उनसे डरने की जरूरत नहीं । वे शुरू-शुरू में ऐसा ही करते हैं, बाद में कुछ नहीं कहते । उन्हें सिर्फ यही डर है कि दूसरों से मिलने-जुलने में कहीं मेरी पढ़ाई का नुकसान न हो । उनकी बड़ी इच्छा है कि मैं पढ़-लिखकर विदुषी बनूं ।" इतना कहकर सुकेशी अपनी ही बात पर हंस दी । फिर बोली, "असल बात यह है कि वे खुद बचपन में अच्छा नहीं पढ़ते थे, इसलिए जोर देते हैं कि मैं अच्छी तरह पढ़ाई करूं ।"

शिवनाथ कुछ कह न सका ।

"पढ़ाई करने का आपका ढंग बहुत अच्छा है । अगर आप घर आयें तो मेरी पढ़ाई भी ठीक से हो जायेगी, साथ पढ़ने के लिए मैंने कह दिया है । स्वामीजी ने भी समर्थन किया है । आज सुबह आपको साथ ले जाने की आज्ञा भी उन्होंने दी ।"

"मैं घर जाकर आपके यहां आ जाऊंगा ।"

"नहीं, आपको अभी मेरे साथ चलना होगा ।"

शिवनाथ सुकेशी के आग्रह को टाल न सका । वह आनन्द-विभोर हो गया । दोनों सुकेशी की घोड़ागाड़ी में बैठ गये । वह जानना चाहता था कि सुकेशी क्या सोच रही है । लेकिन पूछने की हिम्मत न हुई । रास्ते में कुछ समय चुप रहकर सुकेशी ने पूछा, "आप क्लास में पूरे समय मुझे क्यों देख रहे थे ?"

जैसे निरभ्र आकाश में वज्र गिरा ! शिवनाथ ने डर और लज्जा से सिर झुका लिया । बोला, "मुझसे भूल हुई, क्षमा करें ।"

सुकेशी बाहर की ओर देख रही थी। शिवनाथ के अस्वाभाविक उत्तर को सुना तो मुड़कर उसकी ओर देखने लगी। शिवनाथ का मुंह म्लान हो गया। सुकेशी जोर से हंस पड़ी। बोली, "आपसे परिचय करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। छःमाही परीक्षा के बाद जब गुरुजी ने आपकी साहित्य की कापी लाकर दिखायी तभी से मिलना चाह रही थी। आपकी लिखावट भी कितनी सुंदर है? काश! मैं भी वैसा ही लिख पाती! आप साहित्य में भी गणित की तरह सत्तर नंबर कैसे ले आते हैं? मेरे लिए तो अंकगणित में भी साठ-पैंसठ नंबर लाना मुश्किल होता है।"

कोठी निकट आ गई थी। सुकेशी ने कहा, "अब तो हम लोग परिचित हो गये। स्वामीजी के जाने के बाद भी हमारे यहां आते रहिये संकोच न कीजियेगा। हम लोग साथ मिलकर पढ़ेंगे।"

"आप तो कटक जायेंगी न? उस दिन आपके पिताजी स्वामीजी से पूछ रहे थे।"

"हां, गांव का स्कूल अच्छा नहीं लगता। आप ही बताइये, यहां भी भला कोई पढ़ाई होती है! पिताजी के लिए बेटा-बेटी सबकुछ मैं ही हूं। वे चाहते हैं कि खूब पढ़ूं और विवाह न कर व्यवसाय करूं। आप भी कटक चलिए। आपके जैसे मेधावी छात्र को तो कटक के स्कूल में ही पढ़ना चाहिए।"

"हां, इच्छा तो मेरी भी है।"

सुकेशी शिवनाथ के साथ एक ही सीट पर बैठी थी। बोली, "आप उस सीट पर चले जाइये, गांव आ गया है।"

शिवनाथ दूसरी सीट पर जाने की बात रास्ते-भर सोचता रहा था अब सुकेशी का आदेश पाते ही फौरन उधर चला गया। सुकेशी गम्भीर हो गयी।

कोठी के बाहर जमींदार, स्वामीजी और अन्य कुछ लोग बैठकर धर्म-दर्शन आदि पर चर्चा कर रहे थे। स्वामीजी द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत

आदि मतों की आलोचना कर वल्लभ के शुद्धाद्वैत की श्रेष्ठता प्रतिपादित कर रहे थे। गाड़ी से उतरकर शिवनाथ ने उनके चरणस्पर्श किये। स्वामी जी ने उसे देखे बिना ही "आयुष्मान हो, अंदर जाओ," कहा और अपने मत के प्रतिपादन में लग गये।

घर के अंदर जाकर सुकेशी ने पूछा, "हमारा घर आपको कैसा लगा ?"

वे बगीचे के पास से जा रहे थे। उधर ध्यान खींचकर सुकेशी ने कहा, "यह मेरी फुलबगिया है। इसकी देखरेख मैं स्वयं करती हूं। माली केवल सहायता के लिए है। सारा काम मैं अपने हाथों से करती हूं। स्वामीजी देखकर बहुत प्रसन्न हुए। आइये।"

दोनों बरामदा पारकर बगीचे में पहुंचे तो दो आदमी वहां काम कर रहे थे। गुलाब की विभिन्न जातियों—क्रिमसन ग्लोरी, किंग हालैंड ब्यूटी आदि के पौधों की पंक्तियां क्यारियों में खूब लहलहा रही थीं। एक ओर मल्लिका फूलों से लदी इठला रही थी। सुकेशी ने अपनी किताबें शिवनाथ को पकड़ा दीं और कमर में पल्लू खोंसकर मल्लिका के झुरमुट में से सूखी डाल निकालने लगी। शिवनाथ मल्लिका पर झुक गया।

"हैं...हैं, यह क्या किया ?"

शिवनाथ तबतक फूल तोड़ चुका था।

"मुझे अच्छा नहीं लगता। फूल पौधे पर ही रहना चाहिए।"

शिवनाथ ने अपराधी की तरह कहा, "फूल आपको देने के ही लिए तोड़ा है।"

"मेरे बगीचे से फूल तोड़ा, मुझी को देने के लिए! वाह, आप बड़े चतुर हैं!"

शिवनाथ से कुछ कहते न बना, चुप रह गया।

"पौधे पर रहता तो फूल की खुशबू कितने लोगों को मिलती। तोड़ देने पर तो वह एक का ही होकर रह गया..."

शिवनाथ को फिर भी कोई जवाब न सूझा। हाथ का फूल बोझ हो गया था। सुकेशी ने उसके सूखे मुंह को देखा और बोली, "फूल मुझे देने के लिए तोड़ा था तो दीजिये न।"

"सुकेशी ने हाथ बढ़ा दिया। शिवनाथ ने फूल उसके हाथ में दे दिया। सुकेशी ने उस वेणी में खोंस लिया और पूछा, "ठीक है?"

शिवनाथ ने सिर नीचा कर लिया।

"मन में दु:ख हुआ?"

"नहीं तो।"

वहां से दोनों पढ़ाई के कमरे में आये। सुकेशी शिवनाथ को बैठा-कर मेज़ का कोना पकड़े खड़ी रही, फिर बोली, "आप गणित कीजिये कुछ देर, तबतक मैं आती हूं।" गणित की कापी और किताब शिवनाथ को थमाकर वह वहां से चल दी।

शिवनाथ ने सवाल हल किये और मेज़ पर रखी चीज़ों को देखने लगा। एक ओर दो-तीन कापियों के नीचे अलबम रखा था। उसने कौतूहल-वश उठा लिया। अधिकांश सुकेशी के ही विभिन्न भाव-भंगिमा वाले फोटो थे। किसी में हंस रही थी, किसी में जाते-जाते मुड़कर देख रही थी, किसी में फूल के पौधों पर झुकी थी। किन्तु फोटो बहुत अच्छे नहीं बने थे। वह तन्मय होकर देख रहा था कि सुकेशी अंदर आकर जोर से बोली, "आपको मेरा अलबम खोलने की अनुमति किसने दी? बड़ी गंदी बात है यह तो!" उसने अलबम छीनकर अलमारी में रख दिया।

"मेज़ पर रखा था..."

"कैसे लगे फोटो?" सुकेशी ने पूछा।

"सवाल कर दिये हैं।" शिवनाथ बात टाल गया।

"हूं।" सुकेशी को अच्छा न लगा। फिर कुछ रुककर बोली, "ओह, धन्यवाद! बहुत-बहुत धन्यवाद! अब आप जाइये, देर हो जायेगी। कल चार बजे आयेंगे न? मैं स्वयं ही स्कूल से आपको अपने साथ लेती

आऊंगी। आपका समय नष्ट न हो, इसीलिए चार बजे का समय रखा है। रोज मेरी थोड़ी मदद कर दिया कीजिये। करेंगे न?"

सात

स्नेह का घर षड़ंगी के घर से ज्यादा दूर नहीं, सिर्फ पांच-छह घर छोड़कर ही था; परंतु घरों में उतनी दूरी नहीं थी, जितनी आर्थिक अवस्था में। स्नेह के पिता महेश्वर पाढ़ी को दान-दक्षिणा में जो पैसे मिलते उनसे वे घर-परिवार के किसी एक कोने को भी पूरा ढांक नहीं पाते थे। भगवान् ने इतनी दया अवश्य की कि उन्हें बड़ा कुटुंब नहीं दिया। लेकिन कुटुंब में जितने भी प्राणी थे—यानी स्नेह, उसका छोटा भाई पिनाक और पत्नी यशोदा, उनका पेट भरना भी दूभर हो रहा था। मृतक-संस्कार करवाने आदि से भी कोई खास आय नहीं होती थी। एक तो आजकल अधिक संख्या में लोग मरते ही नहीं, और जो मरते, उनके वारिस जी खोलकर दान देने को राजी न होते। फिर भी घर में शांति थी, क्योंकि मां-बेटी दोनों ही धरती की तरह सहनशील थीं।

स्नेह का विवाह करने के लिए इन बारह वर्षों में महेश्वर पाढ़ी ने कितनी ठोकरें खायीं, कहां-कहां की खाक छानी, मगर सब व्यर्थ गया। बेटी की उम्र बढ़ती जा रही थी। रूप, गुण या अच्छी कुंडली को कोई नहीं पूछता! पहला सवाल यही होता—कितना दहेज दोगे? और दूसरा (चाहे गौण ही सही) कहां तक पढ़ी है? प्रस्ताव आते और टूट जाते। सांतरापुर शासन में सब स्नेह का आदर करते, प्रशंसा करते, पर अपने घर की बहू बनाकर कौन ले जाये? गांव की लड़की का गांव में ही विवाह कैसे हो सकता था?

स्नेह का बचपन से ही षड़ंगी के घर आना-जाना था। शिवनाथ उसके खेल का साथी था। वहां वह सबसे ज्यादा देवीपाद से डरती थी। जरा-सी गलती करने या जोर से बोलने पर या तो घुड़क देता या अंदर बुलाकर पीट देता और घर लौटा देता था। बचपन का भय उम्र के साथ बढ़ते-बढ़ते कब प्रेम में बदल गया, वह स्वयं नहीं जान पायी। परंतु देवी के गुस्से से वह अब भी डरती थी। फिर भी देवीपाद के साथ रहने और उससे बातें करने की उसकी इच्छा बराबर बनी रहती थी; इसलिए जब भी सुविधा मिलती, वह षड़ंगी के घर चली जाती थी। फिर अचानक एक दिन उसकी इस स्वाधीनता पर रोक लग गयी। अब रोज-रोज जब चाहे तब वह नहीं जा सकती, क्योंकि बच्ची नहीं रह गयी थी। सिर्फ शनिवार के दिन की छूट यशोदा ने उसे दे रखी थी, मगर साथ ही ताकीद किए रहती—जल्दी लौट आना; और देख, षड़ंगी के घर के अलावा और कहीं मत जाना। स्नेह षड़ंगी के घर जाती, वसुंधरा काम करती होती तो उसकी मदद कर देती, देवीपाद होता तो उससे दो-चार बातें कर लेती, और वह न मिलता तो उसे खोजती हुई बगीचे की ओर चली जाती।

उस दिन स्नेह घर के सारे काम फुर्ती से निपटाने में लगी थी। अगर जाने में देर हो गयी तो देवीपाद बगीचे वाले घर में जाकर सो जायेगा और उससे बातें न हो सकेंगी।

"मां, आज चावल नहीं हैं। चूल्हा कैसे जलेगा?" यह बात स्नेह यशोदा से एक बार नहीं, दो बार नहीं, कई बार पूछ चुकी थी।

यशोदा हर बार कह देती, "तुम्हारे बापू चावल लाने गये हैं। आते ही होंगे।"

यह कोई नयी बात नहीं थी। ऐसा प्रायः होता रहता था। पर आजतक किसी शनिवार को ऐसा नहीं हुआ था। उस दिन बासी भात ही सबने खाया। लग रहा था कि चावल आयेगा नहीं, खाना पकेगा नहीं, सबको व्रत ही करना पड़ेगा। और उधर देवीपाद बगीचे में पढते-

पढ़ते ऊंघ रहा होगा। जब भी स्नेह उसके पास जाती, उस दिन का पढ़ा हुआ वह उसे जरूर सुनाता था। इस प्रकार सुन-सुनकर स्नेह कई बातें सीख गयी थी। बहुत-सी बातों में उसका मत देवीपाद से मिलता नहीं था। देवी चिढ़ जाता, "तुम कुछ नहीं समझती" कहकर उसे झिड़क देता था। लेकिन स्नेह सब समझती थी; देवीपाद कहां गलती करता है, यह उसे बताती नहीं थी, पर जानती सब थी।

कभी-कभी देवीपाद किताब में ही सिर गाड़े बैठा रहता था। स्नेह जान भी न पाती कि कौन-सी किताब है। शायद अंग्रेजी किताब हो! लेकिन अंग्रेजी तो वह जानती नहीं। तब दीवार से ऊंचा उठकर बगीचे में देखने लगती। 'पक्षी क्या सोच रहे हैं? क्या वे भी परस्पर एक-दूसरे को चाहते हैं?' इसी तरह की अनेक बातें सोचा करती। बैठे-बैठे उकता जाती तो कहती, "अच्छा देवी भाई! चलती हूं।" तब कहीं देवीपाद मुंह उठाकर उसे देखता। स्नेह फिर दोहराती, "जाती हूं?" उसका मन तो चाहता कि देवीपाद कहे, "क्षमा कर दो, पढ़ने में लगा रहा, तुमसे दो बात भी न कर सका। अगले शनिवार को जरूर आना।" मगर देवीपाद कुछ न कहता। सूनी आंखों से स्नेह को देखता रहता। उसे लगता, देवी की वे आंखें मानो उसके रोम-रोम को भेद डालेंगी। वह कांप उठती। पूछती, "देवी भाई, क्या देख रहे हो?" देवी मौन, देखे ही जाता। सुंदर-असुंदर सब उसके लिए समान था। तब देवी को उसी अवस्था में छोड़ वह धीरे-धीरे चलती हुयी घर लौट आती थी।

उस दिन, बहुत देर तक बापू की प्रतीक्षा करने के बाद स्नेह षड़ंगी के घर जाने को निकली। यशोदा बेटे को लिये सो रही थी। स्नेह को भूख लगी थी, इधर यह भय भी था कि देवी अगर सो गया तो सारा गुड़ गोबर हो जायेगा। सात दिन की प्रतीक्षा के बाद तो यह दिन आता है, और आज भेंट न हुई तो फिर पूरे सात दिन बाद...

षड़ंगी के यहां सब आराम कर रहे थे। सिर्फ देवीपाद न था। बगीचे में भी न मिला। कभी-कभी ऐसे ही अंतर्धान हो जाता था। सारा

परिश्रम बेकार हो गया। स्नेह को अंदर-ही-अंदर दुर्बलता महसूस होने लगी। कैसा आदमी है? क्या उसे पता नहीं कि मैं शनिवार को आऊंगी! हताश वह आरामकुर्सी पर लेट गयी।

लेटे-लेटे स्नेह को सहसा उस दिन की याद हो आयी जब उसे बुखार चढ़ा था, और घर में किसी को बताये बिना वह देवीपाद से मिलने चली आयी थी। आकर देखा तो देवीपाद बगीचे के एक कोने में किसी मित्र के साथ आम के नीचे बैठा जप कर रहा था। दो मिनट बाद ही वह मित्र पद्मासन से सुखासन में आ गया और फिर उकड़ू होकर बैठ गया था। दोनों दोपहर के बाद बगीचे वाली तलैया में नहा, रेशमी चद्दर बांध, माला हाथ में लेकर बैठे थे। देवी तल्लीन होकर जप कर रहा था, परंतु मित्र का ध्यान उचट गया था। कुछ देर देवी की ओर देखते रहने के बाद उसने कहा था, "देवी! मैं तो घर जाता हूं। किसी और दिन साधना करेंगे, अभी तो नींद आ रही है।" देवीपाद मित्र की बात की मानो प्रतीक्षा ही कर रहा था। आंखें खोल कर बोला था, "अच्छा जाओ, मैं भी चलूंगा।" और तब वह पैरों को सहलाता हुआ बगीचेवाले कमरे की ओर आया था। बहुत देर एक ही आसन में बैठने से उसके पांव झनझनाने लगते थे। उसके पैरों की आहट पाकर आराम कुर्सी पर अलसायी पड़ी स्नेह ने आंखें खोली थीं। देवीपाद के बदन पर रेशम, गले में माला आदि देखकर वह चकित हुई थी और पूछा था, "देवी भाई, यह कौन-सा वेश है?" "तुम नहीं समझोगी। मैं घर जा रहा हूं। पिताजी शाम को माला और रेशम खोजेंगे। इन सब चीजों को समय से पहले ही ठीक जगह पहुंचा देना होगा।" देवी ने कहा था।

यह पूछने पर कि तुम क्या कर रहे थे, उसने जवाब दिया था—जप! स्नेह ने और भी कुछ कहना चाहा था, लेकिन उसके बोलने से पहले ही देवीपाद सीताफल के बगीचे में अदृश्य हो गया था और स्नेह उसके जाने के बाद फिर सो गयी थी। जब उसकी नींद टूटी तो तीसरा पहर संध्या के अंधेरे में खो गया था। मां कितनी चिन्ता कर रही होगी? स्नेह हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुयी थी।

उस दिन की ही तरह आज भी देवीपाद नहीं आया था। शायद थोड़ी देर में आ जाये...

आठ

सुकेशी के कमरे में वह और शिवनाथ मेज के आमने-सामने कुर्सियों पर बैठे थे। मेज पर पैर फैलाये सुकेशी उपन्यास पढ़ रही थी। शिवनाथ सवाल कर रहा था। दोनों अपने काम में लगे थे। बीच में सुकेशी पूछ बैठी, "शिवनाथबाबू, सवाल हल हो रहे हैं या सहायता की जरूरत है ?"

"नहीं-नहीं, सब ठीक चल रहा है।"

"उपन्यास भी खूब रोचक है। छोड़ने को जी नहीं चाहता।"

"पूरा पढ़ चुको तो मुझे कहानी बता देना।"

"अच्छा, आप गणित के बाद भूगोल के प्रश्नोत्तर भी कर देंगे न ?"

"हां, जरूर।"

कुछ देर दोनों अपने-अपने काम में डूबे रहे। कोहनी से बहता पसीना कापी को गंदा न कर दे, इस डर से शिवनाथ ने नीचे रूमाल लगा रखा था। लेकिन कभी-कभी माथे से पसीना टपक जाता और उसे पोंछकर वह पुनः काम में लग जाता था।

सुकेशी उपन्यास पढ़ती रही। बीच-बीच में उसकी तरफ देखकर जाने क्या सोचने लग जाती थी। अंत में पलंग के बिस्तरे का नीचे की ओर लटका हुआ एक कोना उठाते हुए उसने कहा, "ओफ्फ, कितनी उमस है ! शायद वर्षा होगी। जोरों से प्यास लगी है !"

सवाल रोककर शिवनाथ ने उसे सवालिया निगाहों से देखा। सुकेशी ने आगे कहा, "सुराही पलंग के नीचे है। जरा कृपा करके...अगर आप बुरा न मानें।"

शिवनाथ ने कुर्सी से उठकर सुकेशी को पानी पिलाया।

"धन्यवाद !" सुकेशी ने आधा गिलास पानी पीकर मेज पर रख दिया और फिर उपन्यास पढ़ने लगी।

रविवार था। सुकेशी ने उसे खासतौर से बुलाया था। कोठी में सब सो रहे थे। खूब उमस थी। सुकेशी झीने कपड़े का ब्लाउज पहने थी और उसका एक कंधा साड़ी के बाहर था, फिर भी गरमी के कारण उसके गोरे चेहरे से पसीने की बूंदें टपक रही थीं, जिन्हें वह साड़ी के पल्लू से लगातार पोंछे जा रही थी। बीच-बीच में ठंडी हवा का झोंका मानो चंदन का लेप कर जाता और सुकेशी खुशी से किलक उठती। पर शिवनाथ चुपचाप अपने काम में लगा था।

अचानक सुकेशी ने शिवनाथ की ओर देखा, मानो कुछ कहने के लिए साहस जुटा रही हो। सवाल छुड़ाने में लगे रहने पर भी उसे पता चल गया कि सुकेशी उसकी ओर देख रही है। सुकेशी तो पुनः उपन्यास पढ़ने लगी, मगर शिवनाथ का ध्यान टूट चुका था। एक दीये से दूसरे दीये की लौ जला दी जाती है, कुछ उसी तरह एक अमूर्त विचार सुकेशी से चलकर शिवनाथ तक आया और उसकी शिरा-शिरा को स्पंदित कर दिया। अब वह सिर्फ नाममात्र के लिए गणित की कापी की ओर देख रहा था।

कुछ समय बाद सुकेशी ने पूछा, "क्या आपने सब सवाल निकाल लिये ?"

"सिर्फ एक रह गया है !"

"अब छोड़िये उसे और आइये थोड़ी देर गपशप की जाये। आपने मेरी फोटो तो देखी है ?"

"हां !" शिवनाथ की छाती धुक-धुक करने लगी।

"पिताजी के साथ जहां भी गयी, कोई-न-कोई फोटो जरूर खींची है, मगर नौसिखिया होने के कारण उतनी अच्छी नहीं आयीं। पिताजी जरूर अच्छे फोटोग्राफर हैं।"

शिवनाथ एक बार फिर अलबम देखने लगा। आरंभ में सुकेशी के

कई पोज, बाद में जमींदार साहब का परिवार, फिर कई जगहों के अलग-अलग दृश्य थे। एक ग्रुप-फोटो देखकर शिवनाथ रुक गया—जमींदार साहब बैठे थे, बगल में सुंदर स्त्री और पैरों के पास तीन-चार वर्ष की बच्ची। बहुत देर तक देखता रहा।

सुकेशी ने कहा, "मैं बचपन में भी बहुत सुंदर थी।"

"अरे, तो यह सुकेशी है?" शिवनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतनी असुंदर भी आगे चलकर ऐसी सुंदर हो सकती है! पर प्रकट उसने यही कहा, "हां, तब भी आप बहुत सुंदर दीखती थीं।"

शिवनाथ अलबम हाथ में लिए था। सुकेशी उसके पीछे पेपर पर झुक गयी। वह अभी आधा ही देख पाया था कि सुकेशी ने दोनों हाथों से उसे बन्द कर दिया। बोली, "शिवबाबू, चलिये बगीचे की तरफ, बहुत गरमी लग रही है।"

"चलिये! चलिये!" शिव खड़ा हो गया। सुकेशी ने छाती पर से खिसकती हुई साड़ी को संभाला, परंतु शिवनाथ को जैसे बिजली-सी छू गयी, सारा शरीर झनझना उठा था।

दुपहर बीतने को थी। शिवनाथ मगन मन, तृप्त, उल्लसित और एकदम हलका होकर कोठी से लौट रहा था। बगीचे में सुकेशी ने आत्म-निवेदन किया था। वह उसे चाहती है। बाकी बातें शिवनाथ याद करना नहीं चाहता, डरता है, बार-बार सोचने से कहीं उनकी मधुरता कम न हो जाये।

वह सुकेशी के पीछे-पीछे बगीचे में गया था। दोनों जाकर घनी छाया वाले आम के नीचे बैठे थे। यह पेड़ दूसरे पेड़ों की ओट में था। कोठी वहां से दीखती नहीं थी। कुछ क्षण योंही बीत गये। उन्हें एक-दूसरे की ओर देखने का साहस नहीं हो पा रहा था। दोनों के दिल जोर से धड़क रहे थे।

"घर में कितनी गरमी लग रही थी! यहां कितनी बढ़िया हवा

चल रही है !" नीरवता सुकेशी ने ही तोड़ी थी।

"हां, वड़ा सुहावना लग रहा है, जी करता है, रोज यहीं आकर पढ़ें।" शिवनाथ वोल अवश्य रहा था, परंतु उसे यह भान नहीं था कि क्या कह रहा है।

"यहां घास नहीं है, खाद दी गयी है, आपकी धोती मैली हो जायेगी। उधर चलिये थोड़ा।" आम के पेड़ से हटकर उधर, जहां सघनता कुछ अधिक थी, वह उसे ले गयी थी।

शिवनाथ ने नीचे देखकर कहा था, "ठीक है।" फिर सुकेशी उससे सटकर वैठ गयी थी। तव उसे आश्चर्य नहीं हुआ था। अव अवश्य हो रहा है। उस समय तो जैसे इसकी प्रतीक्षा ही थी। वाद में जो कुछ हुआ, उसे वह सोचेगा भी नहीं। अपनी उस अत्यंत निजी और गोपनीय वात में वह अपने मन को भी सहभागी वनाने को प्रस्तुत न था।

वगीचे से लौटते समय सुकेशी ने कहा था, "शिववावू, आज की वात भूल तो न जायेंगे ?"

"सुकेशी, मैं तुम्हें प्यार करता हूं—आज से नहीं, वहुत दिनों से। मैं तुमसे विवाह करूंगा।" उसने सच्चे मन से कहा था।

"खैर, यह तो वाद की वातें हैं। आप यहीं, तनिक ठहरिये मैं पहले जाती हूं, आप वाद में आना। समझे कुछ ?"

खुशी में पागल शिवनाथ घर लौटा तो अंदर पैर रखते ही पाणवा ने कहा, "वावू, वड़े मालिक की तवीयत विगड़ गयी है। सीढ़ी पर चढते-चढ़ते गिर पड़े। शरीर तो कमजोर है ही और यह आना-जाना !"

शिवनाथ दौड़कर षड़ंगी के कमरे में पहुंचा। उसे तेज बुखार था; आंखें निस्तेज। वह प्रलाप कर रहा था। स्नेह सिर पर एक के वाद एक गीली पट्टी वदल रही थी।

"स्नेह, पिताजी को क्या हुआ ?"

किन्तु स्नेह ने शिवनाथ की वात नहीं सुनी। उसका मुंह सूख गया

था, भूख मर गयी थी। घर में भाई और मां बहुत देर से खोज रहे होंगे। बापू को चावल मिला भी होगा या नहीं ; वसुंधरा से क्यों न मांग ले ? मां तो कभी-कभी मांग ले जाती है, मगर उसने वसुंधरा से कभी कुछ नहीं मांगा। तो क्यों न देवीभाई से...स्नेह ने फिर पट्टी बदली। घर में सभी अबतक भूखे होंगे, सोचकर स्नेह खिन्न होती जा रही थी। वसुंधरा पास ही खड़ी षड़ंगी का बुखार देख रही थी। अचानक बोल उठी, "स्नेह, तबीयत अच्छी नहीं है क्या ?"

स्नेह एकदम सतर्क हो गयी, बोली, "नहीं तो !"

पलंग के एक ओर देवीपाद चिन्ता में डूबा-सा बैठा था। शिव अपने को दोषी समझ रहा था; सिर झुकाये हुए उसने पूछा, "मां, पिताजी की तबीयत कब से खराब है ?"

"तू आज फिर कहां चला गया था ?"

"मैं क्या जानता था कि पिताजी की तबीयत बिगड़ जायेगी ?"

"जमीन देखने हंतुआड़ गांव चले गये थे। लौटते-लौटते चार बज गये। घर पहुंचते-पहुंचते बुखार हो आया। सीढ़ी भी न चढ़ सके और गिर पड़े। पाणवा उठाकर लाया। कुछ देर तो सिर्फ 'रमा-रमा' और 'शिव-शिव' ही पुकारते रहे।"

"भाई साहब को चिट्ठी दे दी है ?"

"हां, तार कर दिया है।"

"कौन है ?" षड़ंगी के मुंह से लड़खड़ाती आवाज निकली।

"मैं हूं, पिताजी।" शिव बिस्तर के पास चला गया।

"कहां गये थे ?"

"कोठी की तरफ।"

"हूं !"

"मां, डाक्टर आये थे ?" शिवनाथ ने वसुंधरा की ओर देखकर पूछा।

"हां, दवा लिखकर दे गए हैं। दास दवा लाने बाणपुर गया है।"

"देवी ! देवी ! देवी को बुलाना !" षड़ंगी ने सहसा हड़बड़ाकर

कहा।

"मैं यहीं तो बैठा हूं, पिताजी!"

"कहां बैठा है, मुझे तो दीख नहीं रहा!"

देवी खड़ा हो गया। षड़ंगी का हाथ पकड़कर उसने पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

षड़ंगी थोड़ी देर उसको एकटक देखता रहा, फिर बोला, "आज कुछ पढ़ा तूने?"

"क्या?"

"वह जो तू रोज पढ़ता रहता है।"

"हां।"

"तो बता, क्या पिता के किये पाप पुत्र के कर्मों में प्रतिफलित होते हैं?"

शिव, स्नेह, देवी, वसुधरा सब आंखें फाड़े देखते रह गये। षड़ंगी यह क्या पूछ रहा है?

"बापू!"

षड़ंगी की उत्कंठित दृष्टि अपने प्रश्न का उत्तर मांग रही थी। देवी ने साहसकर कहा, "हां, कुछ लोगों का तो यही मत है।"

"कुछ ही लोगों का, सबका नहीं? तो सब झूठ है! कुछ लोगों की बात हम सच क्यों मानें?" षड़ंगी ने करवट बदली, परंतु आराम न मिला, फिर चित हो गया और कहने लगा, "तू जरा भी नहीं सोचता! आवेश में आकर, उत्साह में भर कर, जो मन में आता है, किये जाता है। बी० ए० पास कर लेता तो क्या बिगड़ जाता! अविद्या पढ़ायी जा रही है, यही सोचकर तो पढ़ायी छोड़ दी। कभी भविष्य का भी ख्याल किया है? मैं क्या सदा जिन्दा रहूंगा, तू मुझ पर निर्भर रहकर कबतक ज्ञानचर्चा करता रहेगा, वेदांत पढ़ता रहेगा? क्यों? तू न भोगेगा तो कौन भोगेगा?" इतना कहकर षड़ंगी चुप हो गया। देवी सिर झुकाये खड़ा रहा। "जा-जा, मेरी आंखों से दूर हो जा। जिसके भाग

मैं जो बदा होगा, भोगेगा, मैं उसमें क्या करूंगा?"

देवीपाद क्षुब्ध होकर निकल आया। पिताजी ने उसे अकारण ही गालियां दीं। वह बड़ा हो गया, कमाई नहीं करता, अत: सब अंगुली उठाते हैं!

उसके जाने के बाद भी षड़ंगी बड़बड़ाता रहा, "चला गया न! इतना मिजाज कि रोगी पिता के दो शब्द भी नहीं सह सका! इतना भी हजम करने की ताकत नहीं? कहां गया वेदांत और उपनिषद? अपने को बड़ा बुद्धिमान समझता है। यही बुद्धिमानी है तेरी..."

नौ

दुखी और अपमानित देवीपाद छत पर चला गया। मधुसूदन की झिड़कियों की उसे उतनी चिंता न थी, पिता के शरीर का कष्ट ही देवीपाद को अधिक दुःखी कर रहा था। ठंडी हवा चल रही थी। छत पर कोई न था। क्षितिज पर चारों ओर अंधेरा छाता जा रहा था। पेड़ों पर चमगादड़ फड़फड़ाने लगे थे। आकाश में एकाध तारा दीखना शुरू हो गया था। बाड़ के उस पार गांव के रास्ते की ओर देखा तो सुनसान, सन्नाटा था। सोचने लगा, संसार में पूर्णता कहां है? सर्वत्र शून्य-ही-शून्य है। पिता कहकर जिन्हें आजतक संबोधित करता रहा, वे आज या कल चले जायेंगे। गांव के अन्यान्य मृतकों की तरह उनका शरीर भी जला दिया जायेगा। स्कूल के रास्ते में श्मशान पड़ता था, स्कूल से लौटते समय उसने कई बार शव को चिता पर ले जाने से लेकर राख ठंडी होने तक सारी प्रक्रियाएं देखी थीं। रमा न आया तो उसीको मुखाग्नि देनी पड़ेगी! पिता का मुंह सदा संतान की प्रशंसा करता है, वाणी सदा पुत्र की मंगलकामना करती है, संतान के दर्शन-मात्र से जो मुंह खिल उठता

है, उसी पिता के मुंह को अग्नि देनी पड़ेगी ! दूध पिलानेवाली मां और वरदहस्त रखनेवाली पिता, इन दोनों के मुंह में आग देने का दायित्व संतान पर !

आज सब-कुछ है—पिता, उनकी बुद्धि, गौरव, प्रतिष्ठा, सब-कुछ है, कल कुछ नहीं रहेगा। संसार मर्त्य है, नाशवान है ! रामचंद्र जैसे राजा भी चले गये, सीता-सी साध्वी भी मिट्टी में मिल गयी। श्मशान ही यदि मनुष्य की यात्रा का अंत है, तो इतनी आपाधापी, यह सारा जंजाल, प्रयत्न, द्वंद्व, विवाह, घर-द्वार, आसक्ति किसलिए ? तब दुःख क्लेश और आशा-निराशा के वर्तुल में फंसा ही क्यों जाये ? सभी तो आकाश के इन्द्रधनुष की तरह रंगबिरंगे और चित्र-विचित्र, होने के बावजूद क्षण-भंगुर है...

पीछे से किसी की हलकी-सी पदचाप सुनायी पड़ी और देवी का ध्यान टूट गया। अंधेरे में कोई उसी की ओर चला आ रहा था, लेकिन साफ़ दिखायी नहीं देता था।

"कौन है ?"

"मैं हूं।"

"स्नेह तुम ?" स्नेह पास आ गयी थी। देवी ने पूछा, "क्या बात है, स्नेह ?"

"कुछ नहीं ! मौसा सो गये, मौसी रसोई में गयी है।"

"पिताजी सो गये तो तुम चली क्यों नहीं गयीं ? घर पर मौसी खोजती होंगी।"

स्नेह ने कोई उत्तर नहीं दिया। अंधेरे में उसका चेहरा, जिस पर प्रतिक्षण रंग बदल रहे थे, दीख नहीं रहा था। देवी स्नेह की ओर से मुंह घुमाकर दीवार पर हाथ टिकाये दूर रास्ते को देखने लगा। कुछ देर तक नीरवता रहा।

"स्नेह ! स्नेह !" नीचे से वसुंधरा ने आवाज़ लगायी. "कितनी रात हो गयी, घर नहीं जाना है क्या ?"

देवीपाद ने घूमकर देखा कि स्नेह उत्तर क्यों नहीं दे रही है? इस बात पर वह उसे डांटने जा ही रहा था कि छत पर वह दिखायी न दी। देवी अचंभे में पड़ गया। वाह, अभी तो यहीं खड़ी थी, कहां चली गयी! उसने ऊपर से ही जवाब दिया, "मां, स्नेह तो नहीं है।"

"क्या छत पर आयी थी?"

देवी सकपका गया। संभलकर बोला, "मैंने छत से ही पिताजी के कमरे की ओर देखा, वह वहां नहीं है।"

उत्तर सुनकर वसुंधरा ने क्या सोचा होगा, यह जानने का कोई उपाय उसके पास नहीं था। वह फिर छत पर टहलने लगा। कुछ ही दूर गया होगा कि अंधेरे में से निकलकर एक छाया उसे अपनी ओर आती दिखायी दी। उसने पूछा, "कौन है?"

छाया चुप रही।

"कौन है?"

"मैं स्नेह..."

"स्नेह? तुम तो चली गयी थीं?"

"जा रही थी।" सीढ़ी तक पहुंची कि मौसी की आवाज सुनकर रुक गयी।"

दोनों ने एक-दूसरे को अंधकार में देखने का प्रयत्न किया, पर कुछ दिखायी नहीं दिया।

"छोटे भाई ने सुबह से जिद पकड़ रखी है..." लेकिन स्नेह की बात अधूरी ही रह गयी। देवी आश्चर्य चकित देखता रह गया। बात पूरी किये बिना ही स्नेह मुंह में पल्लू दबाकर वहां से चली गयी।

नीचे सुनायी दिया, वसुंधरा पूछ रही थी, "तू अबतक कहां थी?"

स्नेह ने कुछ नहीं कहा। डबडबायी आंखों से बाहर निकल गयी। "देवीपाद नहीं समझेगा, कुछ नहीं समझ सकेगा", यही आवाज बार-बार उसके हृदय में गूंज रही थी।

स्नेह के घर में गरीबी का नंगा नाच पहले न हुआ हो, ऐसी बात

नहीं थी। षड़ंगी और दो-चार को छोड़ दें तो ब्राह्मणों के उस गांव में प्राय: सभी गरीब थे। सब मांग-जांचकर गुजर-बसर करते थे। पाढ़ी के घर ऐसा संकट हफ्ते दस दिन में अकसर आ ही जाता था। तब पाढ़ी कोई उपाय कर लेता या यशोदा किसी खाते-पीते घर से मांगकर काम चला लेती। पर खाते-पीते घरवालों की संख्या भी कम ही थी, और फिर इस हफ्ते वह तीन-चार बार मांग चुकी थी। सवेरे यशोदा ने बातों-ही-बातों में देवी से कुछ मांगने का इशारा किया था। स्नेह ने गुस्से में भरकर मां को टका-सा जवाब दे दिया था।

तब मां ने कहा था, "बेटी, गुस्सा क्यों होती है? ब्राह्मण सदा के दरिद्री होते हैं और दारिद्रय उनका आभूषण है। ब्राह्मण अगर धनी हुआ तो लोग समझते हैं, पिछले जन्म के पाप भोग रहा है। सच भी है। एक-एक रुपये में कितने-कितने लोगों का खून, कितनों की भूख-प्यास, तृष्णा-आकांक्षा सनी होती है। धनी होकर दूसरों को कष्ट देने के बदले तो स्वयं गरीब होकर दूसरों से मांग कर खाना अच्छा है!"

यशोदा की बात का स्नेह ने कोई उत्तर नहीं दिया था।

बगीचे में देवी की प्रतीक्षा करते-करते ही दिन ढल गया था। बरामदे से लौट रही थी कि देखा, षड़ंगी आ रहा है—धूल में भरा, थका-हारा। अचानक किसी के गिरने की आवाज सुनकर वह भागी थी। षड़ंगी सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते गिर पड़ा था। पाणवा घर के अंदर से दौड़ा आया था। देवीपाद भी आ गया था। शायद किसी ने जाकर उसे बताया होगा कि मधुसूदन की तबीयत बिगड़ गयी है। इसके बाद तो वह सेवा-सुश्रूषा में घर की बात ही भूल गयी थी। पानी की पट्टी बदलते-बदलते ख्याल जरूर आया कि आज घर में सब एकादशी कर रहे होंगे। फिर उसने देवीपाद को ऊपर छत पर जाते देखा। कुछ समय बाद जब चारों ओर अंधेरा हो गया और षड़ंगी की आंख भी लग गयी तो वह आहिस्ते से छत पर चली गयी। जानती थी कि स्पष्ट कहे बिना देवीपाद कुछ समझेगा नहीं। पर वह कहेगी कैसे? और हुआ भी वही. हजार चेष्टा के बावजूद जो बात

कहने आयी थी, कह न पायी। थोड़ा-सा कहते ही मन विद्रोह कर उठा। मारे अपमान के रोना आ गया। रोते हुए नीचे उतरी और उमड़ते हुए आंसुओं को पोंछती हुई घर की ओर चल दी।

षड़ंगी अपनी आर्थिक स्थिति का भेद किसी को नहीं देता था। सब जानते थे कि वह धनाढ्य है, पर कितना धन उसके पास है, यह कोई नहीं जानता था, यहां तक कि वसुंधरा भी नहीं। अनुमान के अलावा रमाकांत भी सही स्थिति से अनभिज्ञ था और इसलिए दुःखी रहता था। बाप की संपत्ति के बारे में उसने कई बार कई तरह के अनुमान लगाये, परंतु कभी किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सका। उसके बड़े-बड़े सपने थे—कार और बंगले के ही नहीं; सत्ता और षोडशियों और प्रसिद्धि के भी। इस सब के लिए उसे धन चाहिए, दो-चार लाख नहीं, बीसियों-पच्चीसियों लाख। इतना वह अकेला तो कमा नहीं सकता। किसी तरह पिता की संपत्ति को हथियाना होगा। उनकी उम्र पूरी हो रही है। उनके बाद वसुंधरा के लिए ५-६ एकड़ जमीन और मकान छोड़ देगा। बाकी सब लेकर बंबई या कलकत्ता चला जायेगा और वहां एक बड़ा नर्सिंग होम खोलेगा। भाइयों को वह कोई हिस्सा नहीं देगा। वे करेंगे भी क्या? देवीपाद को परलोक और मोक्ष की ही चिन्ता अधिक है। उसे संन्यासी बनने के लिए उत्साहित करना उचित होगा। बाकी रहा शिवनाथ—सीधा, सरल हृदय कर्मठ युवक। उसे अपना ही कर्मचारी बना लेगा।

दोपहर ढल रहा था। रोगी विशेष न थे। दुकान में रमाकांत अकेला बैठा यही सब सोच रहा था। नीमचौड़ी चौराहे के पास ही उसका दवाखाना और दवाइयों की दुकान एक दुमंजिले मकान में थी। एक महिला ने, जो बड़ी देर से उसके पीछे खड़ी थी और जिसकी उपस्थिति का उसे भान भी न था, पूछा, "क्या मैं अंदर आ सकती हूं?"

"आइए!" उसने आदत के अनुसार कहा और मुड़कर महिला की ओर देखा तो बोल उठा, "ओह, रजनी, तुम?"

"आपको कुछ पता भी है, कब से आई हूं ? विचारों में इस कदर खो जाते हैं कि कुछ खयाल ही नहीं रहता !"

"कभी ऐसा हो जाता है। खैर, यह बताओ कि क्यों आयी हो ?"

"अगर आप शाम को खाली हों तो जरा घूमने चलते... सिनेमा..."

"नहीं, आज नहीं, मुझे थोड़ा काम है।"

"आपको तो रोज़ ही काम रहता है। अच्छा मैं जाती हूं, नमस्कार !" रजनी बुरा मानकर चली गयी।

रमाकांत फिर अपने विचारों में खो गया। यह रजनी धनी बाप की दुलारी है। कालेज में पढ़ते समय रमाकांत से मित्रता हुयी थी। रजनी उसे प्यार करती है और उससे विवाह करना चाहती है। आदमी केवल भोग के लिए विवाह नहीं करता। जीवन के उद्देश्य में रजनी कितनी सहायक हो सकेगी, यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। पिता धनी व्यवसायी हैं, पर आठ बेटों में अकेली लड़की, संपत्ति के जब आठ हिस्से होंगे तो रजनी के लिए क्या बचेगा ? रमाकांत की निगाह सिर्फ उसके पिता की संपत्ति पर है। रजनी से उसे जरा भी प्यार नहीं। व्यवहार भी हमेशा रूखा करता है। सामान्य लड़कियों के प्रति बरता जाने वाला स्नेह और शिष्टाचार भी कभी रजनी के प्रति प्रदर्शित नहीं करता।

रमाकांत का ध्यान सड़क की ओर चला गया। देखा, रजनी कार से उतरकर चली आ रही है। वह मन-ही-मन हंसा। कितना ही भगाओ, लौट-लौट आती है।

रजनी ने भीतर आकर कहा, "जो कहने आयी थी, भूल ही गयी। कल शाम हमारे यहां टी-पार्टी है। मेरे एक भाई आई० ए० एस० ट्रेनिंग से लौटे हैं। आपको जरूर आना होगा।"

"पर तुम तो कल सिनेमा के लिए कह रही थीं ?"

"ओह, आपको देखते ही सब गड़बड़ा जाता है। असल में तो पार्टी का निमंत्रण देने आयी थी। उसके बाद सिनेमा भी चलेंगे, सेकंड शो।"

"ठीक है, चलेंगे ।"

"बहुत करके तो मैं कार ले आऊंगी । पर न आ सकी तो भी आप जरूर आयेंगे । आयेंगे न ?" रजनी ने हाथ हिलाकर 'टा-टा' किया और चली गयी ।

दूसरे दिन जब रमाकांत रजनी के घर पहुंचा तो मेहमान आ चुके थे । अधिकांश रमाकांत के परिचित थे । कमरे के ठीक बीचोंबीच युवकों का एक दल ताश खेल रहा था । रजनी रमाकांत को वहां छोड़कर चली गयी । वह एक कोने में वकीलों और डाक्टरों के समूह की ओर बढ़ गया । वहां गरमा-गरम चर्चा हो रही थी :

"तो आप प्राइवेट हाईस्कूल में असिस्टेंट हेडमास्टर हैं ?"

आवाज अजीत के जैसी लगी । रमाकांत ने मुड़कर देखा । अजीत ही था । रमाकांत ने कहा, "नमस्ते, भई, नमस्ते ! पीछे से पहचान नहीं पाया ।"

"अरे ! तुम कब आये ? लो मिलो इनसे—ये हैं यतीनकुमार पट्टनायक, और यह मेरे डाक्टर मित्र—रमाकांत ।"

"शिक्षक होना क्या अपराध है ?" रमाकांत की उपस्थिति की परवा किये बिना ही यतीनबाबू ने पूछा, मानो वे सारी बात का कोई सिद्धांत खोज निकालना चाहते थे । बात का बीच में रह जाना उन्हें अच्छा न लगता था ।

"शिक्षक की गुजर-बसर तो बड़ी मुश्किल से ही हो पाती है, हां, सम्मान जरूर मिलता है ।" अजीत ने कहा ।

"गुजर-बसर का सवाल ही कहां उठता है ? कुछ मिल जाता है, यही बड़े भाग्य की बात है । और सम्मान का यह हाल है कि अपने लिए बीवी पाना मुश्किल हो रहा है । कन्यावाले आते हैं, और तरह-तरह के बहाने बनाकर लौट जाते हैं—जाकर पत्र लिखेंगे, कुंडली का मिलान होना चाहिए, लड़की की मां अभी शादी करने के लिए तैयार नहीं है, आदि-आदि । उनका भी क्या कसूर ? अगर मेरी बेटी हुई तो क्या मैं उसके

लिए आई० ए० एस० नहीं खोजूंगा ?"

"आप ट्यूशन क्यों नहीं करते ? कितावें और कुंजियां क्यों नहीं लिखते ?"

"यह मेरे सिद्धांत के खिलाफ है। अगर ट्यूशन और कुंजियों के चक्कर में पड़ गया तो क्लास में पढ़ाने के लिए तैयारी का समय कहां पाऊंगा ?"

"यह निरी भावुकता है। नैतिकता के चक्कर में पड़कर ही आपने अपनी यह दुर्दशा कर रखी है। अपनी दरिद्रता को सैद्धांतिक जामा पहनाना कायरों का तर्क है। धर्म को व्यवसाय से अलग रखकर ही व्यक्ति और राष्ट्र भौतिक प्रगति कर सकते हैं..."

अभी अजीत की वात समाप्त नहीं हो पायी थी कि एक सज्जन ने प्रवेश किया। वे एक प्रसिद्ध उपन्यासकार थे। अजीत उन्हीं पर टूट पड़ा, "आप तो लेखक हैं। प्रतिष्ठा के साथ चांदी भी वरसती होगी। क्यों, बाबू ?"

"यह इंग्लैंड-अमेरिका तो है नहीं कि चांदी वरसे ! उड़ीसा में किताबें खरीदता ही कौन है। उड़िया पुस्तक उत्तम भी हो तो उसे खरीदना और पढ़ना हेठी समझा जाता है। अंग्रेजी की रद्दी किताब भी पढ़ना शान समझा जाता है। अपनी भाषा की किताब खरीदने और पढ़ने के मामले में हमारा प्रदेश सबसे पीछे है। बंगाल और उत्तर भारत में किताब खरीदना आभिजात्य की निशानी बन गया है। वहां हर महीने घरेलू लाइब्रेरी के लिए हजारों लोग किताबें खरीदना अपना सामाजिक कर्त्तव्य समझते हैं। पर यहां तो हजारों किताबें विकना भी मुश्किल है। लेखक धनी क्या होगा, कभी-कभी तो उसका जिंदा रहना भी मुश्किल हो जाता है।"

"आप जासूसी उपन्यास लिखिए। बहुत बिकेंगे।" रमाकांत ने सुझाव दिया।

"वाह, वाह!" अजीत उछल पड़ा, "मैं भी यही कहने जा रहा था।

जिस तरह अन्य क्षेत्रों में लोग नैतिकता को छोड़ते ही धनी हो जाते हैं, साहित्य में भी यह बात लागू होती है। आप जासूसी किताबें लिखिए। दो रुपये वाली किताबें महीने-दो महीने में ही बिक जायेंगी और चांदी बरसने लगेगी।"

उपन्यासकार महोदय ने जासूसी उपन्यासों का नाम सुना तो लगे नाक-भौंह सिकोड़ने।

अजीत तो मौके की तलाश में ही था। लगा रगड़ने, "आप जासूसी उपन्यास लिखना छोटा काम समझते हैं। काम कोई छोटा नहीं होता, महाशय! पूरे विश्वास और आस्था के साथ किया हुआ हर काम श्रेष्ठ होता है। मन में संशय रखकर जो भी करेंगे, वह कच्चा और हानिकारक होगा। संशय और भीरुता का चोली-दामन का साथ है, और लक्ष्मी कभी संशयात्मा और भीरुओं के पास नहीं जाती। धन कमाना छोटी बात नहीं, तलवार की धार पर चलने के समान है। धन कमाना है तो सबसे पहले निःसंशय हो जाइये। जासूसी किताबें लिखिए और धनकुवेर बनिये। दुनिया में हमेशा धनकुवेरों की तूती बोलती रही है।"

"किन्तु अजीत, धनकुवेरों का अंत में पतन क्यों हो जाता है?" रमाकांत ने पूछा।

"संशय के कारण जिस क्षण अपने कार्य और दर्शन के प्रति उनके मन में संशय जागता है उनका पतन होने लगता है। रावण ने अनेक स्त्रियों का अपहरण किया, उनके साथ बलात्कार भी किया, लेकिन उसका कुछ नहीं बिगड़ा। सीता के अपहरण पर उसे अपने कार्य के औचित्य पर संशय होने लगा और वह विनाश को प्राप्त हुआ। यही हाल कंस और हिरण्यकश्यपु और दूसरों के भी हुए। धनिकों का पतन हमेशा अन्तर्द्वंद्व के कारण होता है, प्यारे डाक्टर भाई!"

रमाकांत कुछ कहने जा ही रहा था कि रजनी अंदर आयी और बोली, "रमाकांतबाबू, जरा सुनेंगे।"

दोनों नीचे गये। वहां बरामदे में एक कोने की तरफ ले जाकर

रजनी ने कहा, "आपका एक्सप्रेस तार आया है। लीजिये।"

रमाकांत ने तार ले लिया। गांव से आया था। खोलते-खोलते उसने पूछा, "तार यहां कौन लाया ?"

"आपका रसोइया। बाहर खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है।"

तार पिताजी की सख्त बीमारी के बारे में था। वसुंधरा ने उसे तुरंत बुलाया था।

"क्यों क्या बात हुयी ? क्या लिखा है ?" रजनी ने पूछा।

"पिताजी की तबीयत बहुत खराब है, शायद इस बार चले जायें।"

"भगवान करे, ऐसा न हो ! मां काली ! काली मां !" रजनी ने दोनों हाथ उठाकर ऊपर अदृश्य की ओर जोड़ते हुए कहा और रमाकांत सोच रहा था कि शीघ्र गांव कैसे पहुंचेगा।

दस

रमाकांत सवेरे आठ बजे घर पहुंचा और सीधा पिता के कमरे में चला गया। षड़ंगी सात-आठ महीने के बाद रमाकांत को देख रहा था। किन्तु मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे आदमी में उल्लास कहां होता है ! रमाकांत ने पैर छूकर प्रणाम किया तो षड़ंगी कुछ बुदबुदाया, जिसे न रमाकांत सुन सका और न पास खड़ा कोई और। रमाकांत ने नब्ज देखी। पूछा, "मां, क्या पिताजी का बुखार उतर नहीं रहा है ?"

"नहीं।"

"शौच होता है ?"

"दो-तीन दिन तक नहीं होता, बाद में अचानक खूब पतला दस्त होता है। हाथ-पांव में हमेशा दर्द..."

रमाकांत ने षड़ंगी का पेट दबाया। "क्यों पिताजी, दर्द होता है ?"

"ओ...हां ?" कहते-कहते षड़ंगी खांस उठा।

"हूं।"

"क्या है ?" वसुंधरा ने पूछा।

"टायफाइड यानी मोतीझरा।"

रमाकांत ने पुर्जा लिखकर दवा और इंजेक्शन लाने के लिए पाणवा को बाणपुर भेज दिया। बरामदे में लोटा और दातुन रखे थे। बेटे के लिए बाहर के चूल्हे पर ही वसुंधरा चाय बनाने में लग गयी थी।

दांत साफ करते हुए रमाकांत ने कहा, "मां पिताजी ज्यादा दिनों के मेहमान नहीं लगते।"

"कैसी अशुभ बात मुंह पर ला रहा है ?"

"मुझे ऐसा ही लगता है। ठीक इलाज नहीं हो सका और रोग बढ़ गया, फिर भी मैं चेष्टा करूंगा।"

वसुंधरा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"मां, रुपये, हिसाब के कागज, खाता-वही, किसे क्या दिया है, आदि सब पिताजी से समझ तो लिया है न ?"

"क्यों ?" इस बार वसुंधरा की दोनों भौंहे तनकर कमान हो उठी थीं।

"क्यों क्या, पिताजी की तबीयत काफी बिगड़ गयी है! उधारी की वसूली के लिए किसपर मुकदमा चल रहा है और किसपर कार्रवाई करनी होगी, यह सब आखिर मुझी को तो देखना पड़ेगा। अभी से पूछकर न रखोगी तो बाद में मुझे परेशानी होगी। तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ?"

"हूं!" वसुंधरा जैसे सबकुछ समझ गयी थी।

"पिताजी की तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो गयी तब तुमने मुझे तार किया। पहले चिट्ठी दे देतीं तो मैं समय पर आकर इलाज कराता या उन्हें कटक ले जाता। इतनी देर से तार करके तुमने सब गुड़गोबर कर दिया। पता नहीं, तुम्हारी अक्ल को क्या हो जाता है ?"

"तू तो आते ही मुझसे झगड़ने लगा। भगवान उनकी रक्षा करेंगे;

उन्हें कुछ न होगा और तुझे उनके काम-काज और लेन-देन को लेकर परेशान न होना पड़ेगा..." वसुंधरा ने उमड़ते आंसुओं को छिपाने के लिए मुंह फेर लिया।

रमाकांत और चिढ़ गया। बोला, "तुम तो कमाल करती हो! क्या मैं नहीं चाहता कि पिताजी अच्छे हो जायें? लेकिन उनकी हालत मुझे अच्छी नहीं लग रही, इसीलिए तुमसे सच-सच कहना पड़ा। पहले से सावधान रहना अच्छा रहता है। अगर मेरी बात तुम्हें बुरी लगी और मेरा आना पसंद नहीं तो मैं कटक लौट जाता हूं।" और वह लपक कर बिस्तर उठाने लगा।

वसुंधरा उसका रास्ता रोक कर खड़ी हो गयी और बोली, "आया है तो चार दिन रह जा, तेरे पिताजी की तबीयत ठीक हो जाये तो चले जाना। इस तरह चला गया तो लोग क्या कहेंगे? फिर उनकी भी चला-चली की वेला..." उसकी आंखें फिर छलछला आयीं।

इस बीच देवीपाद और शिवनाथ बरामदे में आकर खड़े हो गये थे। उनके आने से वसुधरा को थोड़ी हिम्मत बंधी और रमाकांत कुछ संकुचित हो गया। सफाई देता हुआ बोला, "मैं क्या जाने के लिए आया हूं? पर तुम्हारे मुंह से ऐसी कड़ी बातें सुनकर कौन रुकना चाहेगा?"

"ठीक है, अब मैं कुछ नहीं कहूंगी। यह तो सोच कि तेरे इस तरह चले जाने से लोग क्या कहेंगे?"

रमाकांत ने बिस्तर बंद खाट पर डाल दिया और बैठ गया। देवीपाद और शिवनाथ अपने कमरे में चले गये। तभी स्नेह बाहर का दरवाजा ठेलकर भीतर आयी। उसकी मां ने उसे षड़ंगी के हाल-चाल मालूम करने के लिए भेजा था। रमाकांत को देखकर वह अचकचा गयी। बोली, "रमाभाई, नमस्कार! कब आये?"

"अरे, तू तो पहचान में ही नहीं आती। साल-भर में कितनी बदल गयी है!"

मानो स्नेह के चेहरे पर किसी ने गुलाल पोत दिया। कुछ देर चुप

रहकर पूछा, "कितनी वदल गयी ?"

तभी वसुंधरा को उधर आता देख रमाकांत ने पूछा, "मां, अपनी वस्ती में स्नेह से सुंदर कोई लड़की है ?"

वसुंधरा जाते-जाते रुक गयी और उसने सिर उठाकर स्नेह की ओर देखते हुए पूछा, "क्यों वेटी, आज इतनी सुवह किधर ?"

"मां ने मौसा की तवीयत पूछने के लिए भेजा है।"

वसुंधरा चली गयी। रमाकांत स्नेह को छूने की इच्छा को न रोक सका तो समीप जाकर उसकी पीठ थपथपाते हुए वोला, "मैंने तुम्हारे जैसी लड़की कहीं नहीं देखी।"

तभी देवीपाद का रूखा, आदेशात्मक स्वर गूंज उठा, "स्नेह ! जाओ, मां काम में लगी हैं, तुम वैठकर पिताजी की पट्टी वदलो।"

देवीपाद ने इतने कठोर स्वर में आज पहली वार आदेश दिया था। स्नेह को आश्चर्य तो हुआ, पर इस आदेश की अवहेलना करने की शक्ति उसमें नहीं थी, मानो इस तरह का आदेश पाने के लिए उसका तन, मन और आत्मा वहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहे थे। "जा रही हूं।" कहती हुई रमाकांत के निकट से षड़ंगी के सोने के कमरे में चली गयी।

रमाकांत पढ़ाई के कमरेवाली खाट पर वैठ गया और मेज की किताबों को उलटता-पलटता वोला, "वचपन से देखता आ रहा हूं, स्नेह तुम्हारी वात वहुत मानती है, क्यों ?"

रमाकांत के स्वर में निहित विद्रूप को देवी ने महसूस तो किया, लेकिन गम्भीर स्वर में 'हूं' करके रह गया।

देवीपाद की गंभीरता ने रमाकांत को कुपित कर दिया। उसे चिढ़ाने की गरज से वोला, "क्यों जी, तुम्हारी साधना कहां तक पहुंची ? चंडी, चामुंडा—किसी एक को वश में कर लो। कुछ न सही तो कचहरी के पास बैठकर कर्णपिशाची ही कर सकोगे। खाली घर-वैठे रोटी तोड़ने से क्या होगा ? दूसरों पर भार वनकर कवतक जीओगे ?"

"कौन रोटी तोड़ रहा है ?"

"तुम !"

"और मैं दूसरों पर भार बनकर जी रहा हूं, क्यों ?"

"ये बाबाजी, साधुजी जो परान्नभोगी हैं, अगर दूसरों पर भार नहीं तो क्या हैं ?"

"और डाक्टर तो सब परोपकारी हैं ?"

"हैं ही।"

"हैं, खाक ! मानवी दुर्बलता और प्राणभय पर पैसा लूटने वाले कसाई हो तुम डाक्टर लोग। एक दवा खिलाकर दस रोग पैदा करते और बीमार को फंसाये रहते हो।"

"होमियोपैथी दर्शन की गालियां उद्धृत कर रहे हो ?"

"कभी तुम्हारे-जैसा रट्टू न रहा, उद्धरण क्या दूंगा ?"

"रटने की भी शक्ति चाहिए। अवधारण की सामर्थ्य तुम में है ही कहां ? इसीलिए तो पढ़ाई-लिखाई से किनारा कर लिया। यह ध्यान-धारणा सब हीन मनोभाव की ही दूषित अभिव्यक्ति है...'

देवीपाद ने कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद रमाकांत की जबान फिर खुली, "छिः, हमने सोचा था, तू बुद्धिमान होगा; आई० ए० एस० या ओ० ए० एस० कुछ बनेगा। खाली आदर्श के पीछे दौड़कर नष्ट कर लिया अपने को।"

शिवनाथ ध्यान से सुन रहा था। उसे न रमाकांत का मार्ग ठीक लगता था, न देवीपाद का। देवी संघर्ष और कष्ट से बचने के लिए संन्यासी बनना चाहता था—माल-मलीदे खानेवाला संन्यासी। रमा का मार्ग शुद्ध स्वार्थ का रास्ता था। दोनों ही अंधेरे में भटक रहे थे—एक राजमार्ग पर, दूसरा गली-कूचों में। वह दोनों की तुलना कर रहा था कि रमा उस पर टूट पड़ा, "पता नहीं, तू क्या बनेगा ? तू भी यदि निकम्मा निकला तो पिताजी के दुःख का पार न रह जायेगा। इस वर्ष पास हो रहा है या फेल ?"

शिवनाथ ने मौन धारण करना ही उचित समझा।

"तुम कैसे पढ़ते हो, आज रात देखूंगा। किताब-कापियां तैयार रखना।" रमा ने गुर्राकर कहा।

शाम को रमाकांत शिवनाथ से सवाल पूछ रहा था तो स्नेह षड़ंगी के कमरे में से निकली और वसुंधरा से बोली, "मौसी, मौसी, मौसा तुम्हें बुला रहे हैं।"

वसुंधरा सब्जी काट रही थी। फौरन षड़ंगी के कमरे में दौड़ी गयी।

वसुंधरा को देखकर षड़ंगी ने अंगुली के इशारे से किवाड़ बंद कर देने को कहा। घबराई हुई वसुंधरा ने वैसा ही किया और धड़कते हृदय से षड़ंगी के पैरों के पास बैठकर धीरे से पूछा, "क्यों, क्या बात है? तबीयत तो ठीक है?"

षड़ंगी ने शायद प्रश्न सुना ही नहीं, कुछ समय तक पत्नी की ओर देखता रहा, फिर पूछा, "देवी क्या कर रहा है?"

"हरदम 'देवी-देवी' क्या करते रहते हो? पता नहीं, गुरुजी ऐसा क्या कह गये? जरा आंख लगी कि बड़बड़ाने लगते हो—देवी, देवी!"

"वसुंधरा, अब मैं बचूंगा नहीं।"

वसुंधरा ने फौरन मुंह पर हथेली रख दी, "देखो, मेरी सौगंध है, ऐसी अशुभ बात मुंह पर फिर कभी मत लाना।"

"मरना कौन चाहता है? परंतु मुझे अपना भविष्य दिखायी दे रहा है..." अंतिम बात षड़ंगी ने बहुत धीरे से कही और दरवाजे की तरफ देखने लगा। पति की भय-कातर दृष्टि का अनुसरण कर वसुंधरा ने दर्पण में अपनी ही छाया देखी तो कांप उठी। उसे लगा, मानो दर्पण में बैठी स्त्री-मूर्ति का स्वतंत्र अस्तित्व है और कमरे में दो नहीं, तीन व्यक्ति हैं, और वह तीसरा व्यक्ति बहुत देर से उनकी बात-चीत सुन रहा है। क्षण-भर में अपने को संयत कर पति का हाथ अपनी हथेलियों के बीच दबाते हुए उसने कहा, "यों मत देखो। आपके इस

व्यवहार से तो भला-चंगा आदमी भी डर जाये !"

मगर षड़ंगी उसी तरह दर्पण को निर्निमेष देखता रहा।

"क्या देख रहे हो ? मेरी छाया पड़ रही है।"

"देख, देख ! अपना देवी क्या कर रहा है ?"

षड़ंगी की बात पूरी होने भी न पायी थी कि छप्पर के ऊपर से उल्लू के बोलने की आवाज आयी—"म्याऊं-म्याऊं !" जैसे कोई बिल्ली की गर्दन मरोड़ दे रहा हो !

"वसुंधरा ! देवी पागल हो गया है, मार रहा है किसी को ! अरे, किसी मनुष्य की हत्या कर रहा है ! रोक, उसे रोक ! नहीं तो फांसी पर लटका दिया जायेगा !"

वसुंधरा डरकर खड़ी हो गयी। षड़ंगी ने उत्तेजित होकर पलंग से उठने की चेष्टा की तो वसुंधरा ने उसे जबरदस्ती सुला दिया।

षड़ंगी की सांस जोर से चलने लगी, मानो साठ साल लंबा रास्ता दौड़ते-दौड़ते थक गया हो। स्वामी की उल्टी सांस चलती देख वसुंधरा बेटों को बुलाने दौड़ी, पर पति की कठोर पकड़ में उसके एक हाथ की सारी चूड़ियां टूटकर गिर पड़ीं। षड़ंगी रुक-रुककर कहे जा रहा था, "सुनो ! वसुंधरा, सुनो ! साधु ने कहा था कि देवी नरहंता होगा ! देवी को मत बताना, उसे दुःख होगा। पगला है, पर उसका हृदय बहुत स्वच्छ है ! फिर भी नर-हत्या तो उसके भाग्य में लिखी ही है।"

"ठहरो, मैं आती हूं।" कहते हुए वसुंधरा ने दरवाजा खोल भगवान् की ओर हाथ जोड़कर प्रणाम किया और फिर दौड़कर बेटों के कमरे में पहुंच गयी।

"रमा ! देवी ! शिव ! तुम्हारे पिताजी को जाने क्या हो गया है। चलो जल्दी !"

रमा शिवनाथ से उसकी पढ़ाई के बारे में पूछ रहा था। देवीपाद लेटे-लेटे पढ़ रहा था। मां की बात सुनकर तीनों उठ खड़े हुए।

"क्या हुआ पिताजी को ?" देवी और शिव के मुंह से एक साथ

निकला।

"उलटी सांस तो नहीं चलने लगी!" शिवनाथ ने कहा।

वसुंधरा ने माथे पर दुहत्थड़ मारा और चीखी, "चलो, चलो, सभी। शिवनाथ, तू जाकर बांछा तिवाड़ी को बुला ला, दान-दरपन करना है।"

षड़ंगी के कमरे के पास पहुंचकर वसुंधरा चिल्लाप ड़ी, "क्या हुआ? दरवाजा किसने खोला? मैं तो बंद कर गयी थी!"

वाकई षड़ंगी का कमरा खुला पड़ा था। वह धीरे-धीरे सांस ले रहा था। लगता नहीं था कि उसे अधिक कष्ट हो।

"पिताजी सो रहे हैं। गड़बड़ मत करो। विपद टल गयी है। देवीपाद ने षड़ंगी को ठीक से चादर ओढ़ते हुए कहा।

सब बाहर आ गये तो वसुंधरा ने दरवाजा उढ़का दिया। तीनों बरामदे में पहुंचे ही होंगे कि षड़ंगी के कमरे से 'धड़ाम' की आवाज आयी और वसुंधरा पागलों की तरह 'सब लुट गया, मेरा तो सब लुट गया!' कहती हुई दौड़ पड़ी। रमाकांत और देवीपाद भी उसके पीछे-पीछे दौड़े।

अंदर जाकर देखा तो षड़ंगी जमीन पर गिरा पड़ा था और पलंग के पाये से टकराकर उसका सिर फट गया था। वसुंधरा ने उसका सिर अपनी गोद में ले लिया। षड़ंगी की आंखें किसी को खोज रही थीं। वसुंधरा ने उसके कान के पास मुंह लगाकर पूछा, "क्या देवी?"

सुनते ही षड़ंगी का चेहरा मानो घोर विषाद और यंत्रणा से भर गया। एक अमानुषी ध्वनि उसके मुंह से निकली और सिर एक ओर लुढ़क गया।

वसुंधरा ने हिलाकर देखा तो वह निर्जीव हो गया था। उसने दूसरे हाथ की चूड़ियां अपने सिर पर पीट लीं और फूट-फूटकर रोने लगी।

ग्यारह

मौत उसने इससे पहले नहीं देखी थी। मनुष्य की और फिर पिता-जैसे आत्मीय की मृत्यु के आकस्मिक आघात ने देवीपाद के मन और शरीर को अस्त-व्यस्त कर दिया था। वह सोचा करता, आदमी ज़िंदा रहने के लिए क्या नहीं करता! उसका हर क्षण मौत से संघर्ष होता है! हर समय वह इस गलतफहमी में रहता है कि उसने मौत को पछाड़ दिया है। लेकिन दूसरे ही क्षण मृत्यु उस पर हावी हो जाती है...

बगीचे से लेकर सोलरी पहाड़ तक पड़ंगी की जमीन फैली थी। देवीपाद बगीचे के पास खड़ा होकर सोलरी की तरफ देख रहा था। मन में जीवन और मृत्यु के संघर्ष का चिरंतन छिड़ा था। सहसा पत्ते खड़खड़ाने तो उसने केतकी के झुरमुट की ओर देखा—बीस-इक्कीस वर्ष की एक युवती लकड़ियां बीन रही थी। लकड़ियों के साथ जो भी मिलता उसे अपनी टोकरी में डालती जाती थी। उसकी इस हिम्मत पर देवीपाद को थोड़ा ताज्जुब हुआ। युवती छिपने के बजाय खटर-पटर करती हुयी उसकी आंखों के सामने उसकी संपत्ति लूट रही थी! गांव में सब जानते थे कि देवीपाद धीर और मितभाषी है और वह सांसारिक बातों को महत्त्व नहीं देता। तो क्या इसका यह मतलब हुआ कि उसकी सिधाई का अनुचित लाभ उठाकर कोई युवती दिन-दोपहर उसके सामने उसके यहां चोरी करेगी। अचानक देवीपाद की इच्छा हुई कि युवती को टोक दे। फिर सोचा, कौन उलझे, लेने भी दो! गरीब है तभी न ले रही है। और लेगी भी क्या यही दो-चार सूखी टहनियां और कोई सब्जी या फल।

वह पुनः सोलरी की ओर घूम गया और सोचने लगा, मनुष्य को सब-कुछ छोड़कर जाना होगा, फिर भी धन इकट्ठा करने की कितनी तीव्र लालसा होती है उसमें! इसके लिए आदमी चोरी भी करता है।

रमाकांत इतना पढ़ा-लिखा है, लंबे चौड़े उपदेश बघारता है, पर कितना छोटा दिल है उसका! महाजनी के कागजों को लेकर पिताजी की तेरहवीं के दिन ही मां से झगड़ पड़ा। मां का बक्स देखने की जिद करने लगा। आखिर मां को भी गुस्सा आ गया। खूब बकझक हुई।

"मैं यह बक्सा देखूंगा।"

"उसमें मेरा स्त्री-धन है। बहुएं आयेंगी तो बाँट दूंगी। तू कौन होता है उसे हाथ लगानेवाला!"

"तू उग्र चंडी है।"

"तू कुलांगार है।"

संपत्ति! स्वार्थ! संघर्ष!

यह तो संसार की चिरंतन रीति चली आती है।

रमाकांत उसी दिन कटक चला गया था। अंत में वसुंधरा ने ही षड़ंगी की संपत्ति की देख-भाल का उत्तरदायित्व ग्रहण किया था। लेकिन सारी मेहनत तो देवी को ही करनी पड़ती थी। वसुंधरा तो घर में बैठी हुक्म कर देती कि जा, बाणंपुर जा; चम्पतिराय के घर जा, वे चार सौ रुपये ले गये हैं, लौटाया नहीं है; दिगतीपाड़ा जा, वहां सामल के घर—इस प्रकार अनेक जगह देवी को ही दौड़ना...

"क्या कर रही है, री कलमुंही? किस गांव की छोकरी है तू?"

तीव्र नारी कंठ की कठोर भर्त्सना सुन देवीपाद चौंक पड़ा। वसुंधरा उसी युवती को डांट रही थी, जो अब चुपचाप बगीचे में घुस आयी थी। आते-आते कनेर की पड़ोही लकड़ी उसे मिल गयी थी; वही उसके हाथ में थी। देवीपाद स्थिति समझ गया। युवती किंकर्त्तव्यविमूढ़ एक जगह खड़ी थी। वसुंधरा तेज कदमों से पास आ रही थी।

देवीपाद ने दौड़कर लड़की का कंधा हिलाते हुए कहा, "खड़ी क्या है! मार खाने की इच्छा है! चोरी तो करती थी, अब खड़ी क्यों है, जा भाग!"

युवती जैसे उसकी सलाह की ही प्रतीक्षा कर रही थी। सुनते ही उसे

पंख लग गये।

वसुंधरा सब देख रही थी। देवीपाद के निकट आकर कर्कश स्वर में बोली, "वह कौन थी?"

"शायद हरिजनसाही की होगी।"

"यहां क्या करने आयी थी?"

"लकड़ियां बीन रही थी।"

"और तुम?"

"खड़ा था।"

"तुम्हें पूछकर अंदर आयी थी?"

"नहीं तो।"

"वह चोरी कर रही थी और तुम चुप खड़े थे?" देवीपाद निरुत्तर हो गया।

"और मैं आ रही थी तो उसे भगा दिया?"

उसके पास अब भी कोई जवाब न था।

"तेरे वैराग्य की बातें मैं सब समझती हूं। सबकी आंखों में तू धूल झोंक सकता है, मेरी आंखों में नहीं। नाक फुलाकर चलने से ही कोई बैरागी नहीं हो जाता। ब्राह्मण-कन्या को छोड़ने का प्रण कर अंत में तेरे जैसे ढोंगी चमार की लड़की ब्याहते हैं; अपनी संपत्ति मटियामेट कर पराये धन के सहारे जीते हैं। यदि धन इतना बुरा है तो बाप-दादों की कमाई पर क्यों निर्भर कर रहा है? खुद में तो घिसा पैसा कमाने की ताकत नहीं और चले हैं दानवीर बनने!"

देवीपाद और न सुन सका। वसुंधरा ने आज बहुत सारी बातें कह दीं। उसका इतना अपमान!

बगीचे का फाटक खोल वह बागुड़ के किनारे-किनारे धीरे-धीरे चलने लगा। उसका मन अशांत हो गया था और यात्रा भी उद्देश्यहीन थी।

बारह

"ठहरना शिवनाथ, वहीं जरा रुकना !"

पिता की तेरहवीं के बाद से शिवनाथ ने पुनः सुकेशी के यहां जाना शुरू कर दिया था। दोनों साथ बैठकर कभी पढ़ते और कभी गप्पें लड़ाते। मगर आज जब वह रोज की तरह सीधा सुकेशी के कमरे की ओर जा रहा था तो उसकी स्वच्छंदता में बाधा उत्पन्न हो गयी। चौखट पर पीढ़ा डाले सुकेशी की मां बैठी थी और उसने उसे मालिकाना ढंग से रोक दिया था। शिवनाथ सिटपिटा गया और उसे लगा, मानो बिना अनुमति घुस आने का अपराध कर बैठा हो।

सुकेशी का दरवाजा आधा उढ़का हुआ था। उसने अपनी मां की बात सुन ली थी। अंदर से ही बोली, "ठहरिये, शिवनाथ बाबू ! मेरा काम हो गया, बाहर ही आ रही हूं।"

दूसरे ही क्षण कसे ब्लाउज पर धूप-छांव वाली साड़ी पहने वह बाहर आ गयी। दो लंबी-लंबी मोटी वेणियां उसके कंधे से होकर सीने पर लहरा रही थीं। चेहरे पर पाउडर की हलकी-सी परत चढ़ी थी और शरीर से महंगे सेंट की खुशबू आ रही थी।

"कैसी लगती है ?" सुकेशी ने शिवनाथ से पूछा और फौरन बात मोड़ दी मां की ओर, "मां, ठीक तो बंधी है न ?"

बात शिवनाथ के मुंह में ही रह गयी।

सुकेशी की मां ने कहा, "मैं कपड़े पहनकर आ रही हूं। तू जाकर देख जरा, जीप आयी या नहीं ?"

"मां, शिव भी हमारे साथ चलेगा।"

मां ने कोई उत्तर नहीं दिया और कपड़े पहनने के लिए कमरे में चली गयी।

सुकेशी ने कहा, "आज पढ़ाई-लिखाई की छुट्टी। हम लोग घूमने जा रहे हैं।"

शिवनाथ कुछ कहता, उसके पहले वह तितली की तरह उड़ती हुई बाहर चली गयी और तुरन्त लौट भी आयी, "मां, ड्राइवर जीप ले आया है। जल्दी कपड़े पहन लो। बारह तो बज गये हैं।"

"पुजारी से कहकर नाश्ता, चटाई और दूसरी सारी चीजें जीप में रखवा दे।" मां ने कमरे के अंदर से ही आदेश दिया।

"अच्छा !" कहकर वह रसोइये को सब बता आयी।

"कहां जाना है ?" शिवनाथ कुतूहल न रोक सका।

"भाटपाड़ा के दलवेहरा की इष्टदेवी और सोलरी पहाड़ की अधिष्ठात्री सिद्धावली देवी के दर्शनों को। वहां एक कुण्ड है, उसमें नहायेंगे। देव-दर्शन, खाना-पीना और सैर-सपाटा होगा। आप तो शायद पहले भी गये होंगे। मां भी हो आयी हैं, पर मैं बार-बार सोचकर भी अभी तक जा नहीं पायी। आज अवसर आया है।" सुकेशी की बातों में उत्साह लहरा रहा था।

"हां, मैं एक बार हो आया हूं।"

"कहते हैं कि भगवान के पास जाने की भक्त की इच्छा कभी तृप्त नहीं होती; बार-बार जाने को जी करता रहता है।"

"जिस आराध्या को बार-बार देखने की इच्छा हो, वह मेरी आंखों में समा चुकी है..." कहकर शिवनाथ का चेहरा लाल हो गया। फिर कुछ देर बाद बोला, "इसलिए मेरा वहां जाने का सवाल ही नहीं उठता। मैं तो सदा उनके पास हूं।"

सुकेशी ने उन्मत्त करने वाली मुस्कान से शिवनाथ को देखा।

"सुकेशी !" शिवनाथ का स्वर गंभीर हो गया था !

"हां।"

"सदा देवता अपना कर रखेंगे, विश्वास नहीं होता। देवी-देवताओं की रीति-नीति मर्त्य मानवों से भिन्न होती है, इसलिए डर लगता है।"

"अपने पर विश्वास रखो।"

"हूं!"

"कायर कहीं के!" सुकेशी ने शिवनाथ की बगल में चिकोटी काटी और भाग गयी।

नरहरिपुर से चारेक मील दूर सोलरी पर्वतमाला है। पहाड़ के उत्तर की ओर पश्चिमी कोने पर भाटपाड़ा है। भाटपाड़ा के दलबेहरा एक समय इस इलाके पर शासन करते थे। भाटपाड़ा से एक-दो फर्लांग पहाड़ की ओर, ठीक पहाड़ के चरणों में सिद्धावली ठाकुराणी हैं। देवी के पास दो छोटे-बड़े सोते प्रपात की शक्ल में ऊपर से गिरते हैं। देवी का फूस का स्थान पत्थर के खंभों पर टिका है। भाटपाड़ा से रोज ब्राह्मण आता है, पूजा करके चला जाता है। देवी के मंदिर के पास दो-चार नारियल के लंबे पेड़ हैं और कुछ ही दूरी पर बांस का घना जंगल। पीछे सोलरी पहाड़ खड़ा है। यहां सदा भीड़ नहीं होती, पर पर्वों के समय खूब जन-समागम होता है। मकर संक्रांति के दिन बड़ा मेला लगता है। गांव से खुंटा-पल्ली तक बैलगाड़ी का रास्ता है। मोटर से जाने पर बालू गांव होते हुए गंगाधरपुर जाना पड़ता है। वहां से भाटपाड़ा और फिर पैदल आध कोस।

इन लोगों को भाटपाड़ा के दलबेहरा के घर जीप छोड़कर देवी तक आते-आते दो बज गये। नाश्ता साथ ही रख लिया था। जमींदारनी को पर्यटन का बहुत शौक था। पति को फुसलाकर भारत के कई दर्शनीय स्थानों की यात्रा कर चुकी थी। सिद्धावली भी तीन-चार बार आ चुकी थी। आज आने की विशेष इच्छा न थी, पर सुकेशी के आग्रह पर आना पड़ा।

देवी को प्रणाम करने के बाद सब मंडप में बैठे थकान मिटा रहे थे। तभी सुकेशी चहक उठी, "कितनी सुंदर जगह है! मां, तुम पहले क्यों नहीं लायीं? इच्छा होती है, हमेशा यहीं रहूं!"

"सदा रहने पर क्या यह जगह अच्छी लगेगी?" शिवनाथ कह उठा।

"शिवनाथ की बातें तो हमेशा नीरस होती हैं। मां, पहले ड्राइवर और पुजारी नहा लें, हम लोग बाद में जायेंगे।"

"ठीक है।"

जमींदारनी, सुकेशी और शिव को कुंड का ठंडा पानी अच्छा लगा। सुकेशी ने तैरने के बहाने दो-चार बार हाथ से थाप मारकर शिवनाथ के मुंह पर पानी छींट दिया। उसकी बहुत इच्छा हो रही थी पानी में तैरने की, खेलने की, हल्ला-गुल्ला करने की, पर खाली इस झरने के नीचे ही रह गये तो बाकी जगहें रह जायेंगी। शिवनाथ को पटाकर वह पहाड़ के ऊपर की ओर चढ़ने लगी। लकड़हारों के जाने-आने से जो रास्ता बन गया था, उसी के सहारे दोनों चढ़ने लगे। उद्देश्य था, झरने का उद्गमस्थल देखना।

चारों तरफ देखते हुए दोनों लगातार ऊपर चढ़ते गये। बीसेक हाथ चढ़ने के बाद नीचे की ओर देखा तो मंडप, झरना, कुंड आदि कुछ दिखाई नहीं पड़ा। सब पेड़ और लताओं आदि की ओट में छिप गये थे।

"हमें कोई देख नहीं रहा है।" सामान्य शब्दों को विशिष्ट अर्थ से मंडिकर रहस्यपूर्ण हंसी के साथ सुकेशी एक बड़ी-सी चट्टान पर बैठ गयी।

नर और नारी! मानवी सृष्टि का आदिम संकेत! सिहरन!

शिवनाथ खड़ा होकर सुकेशी की ओर देखता रहा। कुछ क्षण बाद सुकेशी ने शांति भंग की, "यह देखिए, यहां झरना दो भागों में विभक्त हो गया है। एक धारा के साथ आप जाइए और दूसरी के साथ मैं। अगर आपको पहले झरने का उद्गम दीख जाये तो जोर से आवाज दीजिए, मुझे मिल गया तो मैं आवाज दूंगी, आप दौड़े आना। उद्गम की खोज और आज हमारे जीवन का एक कृतित्व बनकर रहेगा।"

दोनों झरने की धाराओं के साथ अपनी-अपनी खोज पर चल दिए। सुकेशी उत्साह से जा रही थी, शिवनाथ विवश होकर।

कुछ दूर जाने पर झरना सुकेशी की आँखों से ओझल हो गया। पर वह अनुमान के सहारे ऊपर चढ़ती गयी। कुछ ऊपर जाने पर एक हाथ चौड़ी धारा मिली, जिसे देखकर वह आनंदित हो गयी। धारा के दोनों ओर छोटे-बड़े अनेक पत्थर पड़े थे, थोड़ा आगे एक बड़े पत्थर पर कोई औंधा लेटा था, उसके दोनों हाथ पानी में तैर रहे थे। वह चौंक पड़ी। इस निर्जन वन में कौन हो सकता है ? अपनी उपस्थिति जतलाने के लिए उसने सूखे पत्तों को खड़खड़ाया। वह वैसे ही पड़ा रहा। सिर्फ बोला, "कौन है ?"

"मैं !"

"मैं कौन ?"

"मैं...मैं...सुकेशी महापात्र।"

"ओह ! सुकेशी कुमारी !" अपरिचित घूम गया। वह शिवनाथ का बड़ा भाई देवीपाद था। घनिष्ठ परिचय तो नहीं, पर परस्पर एक-दूसरे को पहचानते अवश्य थे। सुकेशी ने नमस्कार किया।

"आप इधर कहां ?" देवीपाद ने पूछा।

"शिवबाबू, मैं, मां सब घूमने और देवी के दर्शन के लिए आये हैं।"

"और लोग कहां है ?"

"नीचे, देवी के पास। शिवबाबू झरने की दूसरी धारा के साथ ऊपर गये हैं। हमने उद्गम देखने की होड़ बदी है। मैंने पहले देख लिया।"

"उद्गम यह नहीं, यहां से बहुत ऊपर है।" देवीपाद ने हंसकर कहा।

"अब तो और ऊपर नहीं जा सकूंगी। आप इधर कैसे आ गये ?"

"कभी-कभी इच्छा होने पर यों ही चला आता हूं।"

"आपको डर नहीं लगता, ऐसे जंगल में अकेले ?"

"लगता भी है, और नहीं भी। किन्तु अच्छा लगता है, इसलिए चला आता हूं। सुनिये, आपको नीचे से पुकारा जा रहा है।"

सुकेशी ने कान लगाये, मां नीचे से बुला रही थीं।

"जाइये।"

"मैं अकेली जाऊंगी ? आप भी चलिये, नहीं तो मुझे डर लगेगा।"

देवीपाद ने सुकेशी की ओर देखा। लोगों के लिए जरूर सुंदरी है। स्नेहप्रभा के सौंदर्य से थोड़ा भिन्न प्रकार का सौंदर्य है ! फिर भी सुंदरी है। स्नेहप्रभा सुगठित सुगंधित मालती है; सुकेशी वन-नदी की तरह तन्वंगी, वेगवती, तरंगमयी परन्तु पानी सूख जाने पर ?

"चलिए।" उसने कहा।

रास्ता अनेक छोटे-बड़े पत्थरों से पटा हुआ था। बड़े पत्थरों पर पैर रखकर चलना होता है। छोटे पत्थरों या कंकड़ों पर पैर रखने से फिसलकर गिरने का डर था।

"मेरा हाथ पकड़िए। यहां चढ़ने की अपेक्षा उतरना कठिन है।" देवीपाद ने हाथ बढ़ा दिया। सुकेशी उसका हाथ पकड़कर आहिस्ते-आहिस्ते उतरने लगी।

तेरह

देवीपाद गांव में पहुंचा तो शाम ढल गयी थी। घर-बाहर लोग संध्या-बत्ती कर चुके थे। गोपीनाथजी के मंडप में लालटेन जलाकर ब्राह्मणों के लड़के ताश खेलने बैठ चुके थे। वह अन्यमनस्क घर के अंदर घुसने लगा तो स्नेह की आवाज सुनकर ठिठक गया।

"मौसी, देवी भाई आ गये ?"

"हरदम 'देवी-देवी' करती रहती है। दो घंटे में पांच बार पूछ चुकी है। क्या एक दिन देखे बिना नहीं रह सकती ?"

यह सच है कि स्नेह दिन में भी कई बार देवीपाद के बारे में पूछ

गयी थी, लेकिन वसुंधरा ने कभी उसे इस तरह नहीं फटकारा था। इस समय यह अप्रत्याशित प्रहार उसे बिन बादल की गाज की तरह लगा और वह भौंचक रह गयी। कुछ देर तो उसकी समझ में ही नहीं आया कि माजरा क्या है।

जानकी वसुंधरा के काम में हाथ बटा रही थी। उसे संबोधित कर वसुंधरा ने आगे कहा, "यह जितनी छोटी उतनी ही खोटी है। शक्ल की भोली, पर भीतर से चतुर-चालाक। कितने लोग देखने आये और नापसंद कर लौट गये। मां-बाप जो चाहते हैं कि हमारे घर डेरा डालकर बैठ जाये। हमारा देवी बेचारा सीधा-सादा और भोला-भाला है ही। इसलिए शनिवार के शनिवार उस पर मंतर चलाने आ जाती है। छोटे आदमी की हिम्मत तो देखो! वही मसल हुई न कि छछूंदर मांगे मन-भर तेल! घर पर दो जून चूल्हा जलने का ठिकाना नहीं, गरीब जाचक पाढ़ी बांभन, और हौसले—पड़गी-घर की वहू बनने के...।"

"'मौसी'!" अपमान से निढाल स्नेह सिर्फ इतना ही कह सकी। आंखों में आंसू भर आने के बाद उसे बाहर-भीतर सर्वत्र अंधेरा ही दिखाई देने लगा था।

"मौसी-मौसी क्या बक रही है? टलती क्यों नहीं यहां से! जवान लड़की दूसरों के घर कूदती फिरे, यह कोई अच्छी बात है? मैं तो तेरे भले की ही कह रही हूं।"

देवीपाद तीर की तरह अंधेरे से उजाले मे आ गया। क्रोध के कारण उसका सारा शरीर कांप रहा था। इच्छा हुई कि चिल्ला कर कहे, मां, तेरे-जैसी डायन नहीं देखी। इतना जहर तेरे मुंह में और इतना कपट-क्रोध-दंभ तेरे मन में! किसे क्या कह रही है, जरा यह भी तो सोच! वह गरीब के घर की बेटी है तो क्या उसकी कोई इज्जत ही नहीं? ऐसी निष्कलंक देवी स्नेह की खातिर यहां घड़ी-भर को आ जाती है तो उस पर इतना संदेह! पर इतना घिनौना लांछन...

पर देवीपाद के मुंह से यह कुछ नहीं निकला। एक बार 'मां' कहने के बाद उसकी जीभ मानो तालू से चिपक गयी। वह क्रोध में थरथराता खड़ा रहा। वसुंधरा सिटपिटाकर सोनेवाले कमरे में चली गयी। जानकी काँसे का कटोरा मांजने बैठ गयी।

जब देवीपाद का क्रोध शांत हुआ, उसके बहुत पहले ही स्नेह वहां से जा चुकी थी।

उस दिन के बाद से स्नेह षड़ंगी के घर नहीं गयी। बचपन से उसका उस घर में आना-जाना था। स्वच्छंद, निष्प्रयोजन बिना किसी अभिप्राय के आजतक किसी को उसके आने पर कोई आपत्ति नहीं हुई थी। उलटे वह वसुंधरा के कई कामों में मदद ही करती थी, कोई बीमार पड़ता तो सेवा कर जाती। षड़ंगी उसे स्नेह करता था। सभी उसे मन-ही-मन चाहते और उस पर विश्वास करते थे। सयानी हो जाने, विवाह की बात चलने और मां के प्रतिबंधों के फलस्वरूप इधर उसका आना कम हो गया था, पर शनिवार को दोपहर के समय वह बिना नागा आ जाती थी।

उस घटना के बाद तीसरे शनिवार के दिन महेश्वर पाढ़ी के घर के आगे दो प्रौढ़ों ने एक युवक से पूछा :

"क्यों साहब, महेश्वर पाढ़ी का मकान यही है ?"

"जी हां।"

"हम लोग देवपुर गांव से आये हैं। आप शायद घर के मालिक से परिचित हैं। कृपया अंदर खबर कर देंगे ?"

"जी, जरूर आप आइये।" युवक उन्हें बरामदे तक ले आया और बोला, "आप यहीं इंतजार कीजिये, मैं भीतर खबर कर आता हूं।"

"स्नेह ! स्नेह ! महेश मौसा !" पुकारता हुआ वह अंदर घुस गया। घर में सब से पहले स्नेह ने ही उस आवाज को पहचाना और उसे मानो खजाना ही मिल गया। किलक उठी, "देवी भाई ! आज अहोभाग्य ! तुम्हारे चरण तो पड़े !"

घर के अंदर महेश्वर पाढ़ी छोटे बच्चे को गोद में लिये बैठे थे। यशोदा बरतन माँज रही थी। देवीपाद को देखते ही सब खुश हो गये। संभ्रांत घर के आदमी का आना भी शुभ शकुन होता है। स्नेह ने सोचा, देवी उस दिन के असभ्य व्यवहार के लिए दुःख प्रकट करने आया है। शायद अनुनय करे कि वह उन सब बातों को भूल जाये। शायद कहे कि उसकी मां क्या स्नेह की मां नहीं है? और शायद मां का सारा दोष अपने सिर ओढ़ ले, जिससे स्नेह क्षमा कर सके।

"मगर मां-बाप के सामने देवी इतनी सारी बातें कह नहीं सकेगा; इतने दिनों बाद मिला है, तो बहुत-सी बातें उसे कहनी होंगी, यह सोचकर वह पीछे बाड़ी की ओर जाने लगी; लेकिन जाते-जाते रुक गयी, क्योंकि देवी कह रहा था, "मौसा, देवपुर गांव के कोई दो सज्जन आपसे मिलने आये हैं।"

"देवपुर गांव से आये हैं?" पाढ़ी और उसकी पत्नी दोनों के मुंह खुशी के मारे दमकने लगे।

आज सुबह ही कौवा बोला था। हे गोपीनाथ, तुम्हीं सहायक हो! यशोदा ने मन-ही-मन गोपीनाथ की मनौती मानी।

पाढ़ी ने गद्‌गद् होकर कहा, "बेटी, दरी बाहरवाले कमरे में बिछा दे। अच्छी-सी साड़ी पहन ले और बाल भी बांध लेना।"

देवीपाद सारी बात समझ गया—स्नेह को देखने आये हैं। बोला, "अच्छा मौसा, मैं चलता हूं।"

"जरा ठहर जा, बेटा! जब आया ही है तो शुभकार्य हो जाये, फिर चले जाना।"

देवीपाद की दृष्टि स्नेह पर पड़ी। वह खड़ी-खड़ी उसी की ओर देख रही थी। पता नहीं क्यों, देवीपाद की आंखें झुक गयीं, मानो वह कसूरवार हो। उसके बाद स्नेह अंदर चली गयी।

अतिथियों के स्वागत-सत्कार के बाद स्नेह और वर की कुंडलियां मिलाई गयीं। राजयोटक था। जन्मकुंडली मिलने के बाद पाढ़ी ने

स्नेह को आवाज दी। आगंतुकों ने सिर उठाकर अंदर की ओर देखा। देवीपाद भी स्नेह को इस तरह देखने लगा मानो स्वयं अतिथि हो और स्नेह को आज पहली ही बार देख रहा हो। धीरे-धीरे, निःशब्द, लज्जा-वनत वह थाली लिये आ रही थी। उसके गाल लाल हो गये थे। पान की तश्तरी रखकर वह चुपचाप खड़ी हो गयी। कितनी देर बीती, कोई जान नहीं पाया।

आगंतुकों में से पंडितजी ने स्वस्ति-वाचन के बाद मुदित स्वर में कहा, "शादी यहीं होगी। कन्या सुलक्षणा है, रत्न है। बेटी, तुम्हें देखकर हमारे चक्षु पवित्र हो गये। सौभाग्यवती भव !"

देवपुर के दूसरे अतिथि को इसी की प्रतीक्षा थी। पंडित के अनुमोदन से उसका रास्ता साफ हो गया। उसने स्नेह का हाथ पकड़कर अंगूठी पहना दी।

महेश्वर ने उमड़ते आंसुओं को रोकते हुए कहा, "बेटी, अब, तू जा।"

स्नेह लौट गयी। आगंतुक भी उठ खड़े हुए। पाढ़ी हाथ जोड़े खड़ा था।

"हम तीन-चार दिन में सब बातों की व्यवस्था कर पत्र डालेंगे।"

"जो हुकम !"

"आपका परिचय नहीं मिला।" देवीपाद की ओर मुड़कर आगंतुकों ने पूछा।

"जी, मुझे देवीपाद कहते हैं। मधुसूदन षड़ंगी का मंझला पुत्र हूं।"

"ओह, मधुबाबू ! उन्हें कौन नहीं जानता ! बड़े भाग्यशाली थे ! स्त्री-पुत्र आदि सारे परिवार के सामने स्वर्ग सिधारे।"

पाढ़ी अतिथियों के साथ बाहर चला गया और देवीपाद स्नेह को खोजता हुआ अंदर। जब घर में नहीं मिली तो पिछवाड़े जाकर देखा। वहां बरामदे में खड़ी आंखें पोंछ रही थी। देवीपाद दबे पांव उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया। बोला, "स्नेह, आज घर जाकर मां से

झगड़ा करूंगा।"

स्नेह अंगुली में साड़ी का पल्लू लपेटती चुप खड़ी रही।

"उन्हें तुम्हारी सगाई की बात बताऊंगा और कहूंगा कि उनकी सारी गालियां स्वयं उन्हींके दोषी मन की उपज थीं और उन्होंने बिना कारण ही तुम्हें कष्ट दिया।"

"मेरे लिए किसी को कुछ कहने की जरूरत नहीं !" स्नेह की आवाज़ रूखी थी।

देवीपाद को ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। अत: बात बदलने के लिए बोला, "तुम्हारे आने के बाद उन्होंने तुम्हारी बहुत प्रशंसा की। कह रही थीं, तुम तो लक्ष्मी हो, अंधेरे घर का दीपक हो।"

"पर तुम इतने खुश क्यों हो ? तुम्हारी बातों से लगता है, जैसे मैं तुम्हारे ही घर जा रही होऊं।"

"स्नेह, क्या कह रही हो ?" देवीपाद के लिए चोट तीखी थी।

स्नेह मुह फेरे खड़ी थी। देवीपाद कुछ बोल नहीं पाया। धीरे-धीरे लौट गया।

चौदह

डाक्टर की दुकान के अन्दरवाली कोठरी में मेज़ के एक ओर रमाकांत और दूसरी ओर उसका वकील मित्र अजीत बैठे थे। दो चाय के प्याले बीच में पड़े थे। गप्पें चल रही थीं। अजीत कह रहा था, "हर चीज़ की कीमत होती है। अगर सही कीमत मालूम न हो तो आदमी कदम-कदम पर ठगा जाता है। जो जीवन की सही कीमत आंक सकता है, वही सफल कहा जाता है। शिक्षा, संस्कृति, अनुभूति आदि सबका उद्देश्य है सही कीमत की समझ पैदा करना..."

"तुम तो अर्थ का अनर्थ कर रहे हो।"

"किसी वस्तु का कोई स्थिर अर्थ नहीं होता। देश-काल को लेकर अर्थ और सत्य के रूप बदलते रहते हैं। बौद्ध श्रमण तो उपयोगिता को ही सत्य मानते हैं। ठीक भी है। उपयोगिता ही हमारे जीवन में हर वस्तु की सत्यता का मानदंड होना चाहिए। जिस उपाय से भी मनुष्य अपना उद्देश्य पूरा कर सके वही उचित, वही सत्य है।"

इसी बीच कंपाउंडर ने आकर कहा, "बाबू! आपको कोई रमेश-बाबू पूछ रहे हैं।" इतने में तो रमेश पर्दा हटाकर अंदर आ भी गया।

"अरे, यहां तो पहले से महफिल जुड़ी है!" उसने कहा।

"आओ रमेश! सुना कि तुम्हारी शादी अगले महीने हो रही है?" अजीत ने पूछा।

"हां, बात तो कुछ ऐसी ही है।"

"मगर कहां?"

"रमाकांत के गांव में।"

"शक्ल-सूरत कैसी है?"

"यह रमा से ही पूछो।"

"यानी तुमने अभी तक उसे नहीं देखा?"

"नहीं भाई!"

"बिना देखे ही ब्याह लाओगे?"

"ऐसा ही समझ लो।"

"बड़े विचित्र जीव हो दोस्त! सोलहवीं सदी के प्राणी लगते हो।"

"आपकी प्रशंसा के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।"

"पर अजीत, लड़की वास्तव में सुंदर और गुणी है। समझ लो कि रमेश के भाग्य जग गये।" रमाकांत ने कहा और फिर रमेश से पूछा, "आज किधर निकल आये?"

"गांव जा रहा हूं। वहां से सीधा कलकत्ता। सब मुझको तो करना पड़ेगा। विवाह का निमंत्रण-पत्र भी छपवाना है। इस काम में रमाकांत,

तुम्हारी मदद चाहिए। यह बीस रुपये रखो। मजमून मैं भेज दूंगा।" रमेश ने दो नोट दिए और उठ खड़ा हुआ, "मैं चलता हूं।"

अजीत भी रमेश के साथ चला गया।

रुपये जेब में डालकर रमाकांत ऊपर जाने के लिए उठा ही था कि रजनी तूफान की तरह घुस आयी। उसके चेहरे पर गहरी उद्विग्नता के चिह्न थे। बोली, "रामबाबू, उस दिन गांव जाने पर क्या हुआ, आपने कुछ नहीं बताया। कब लौटे, यह भी पता नहीं चला। मुझे तो अखबारों से मालूम हुआ। उस दिन यहां आयी थी, पर आप नहीं थे। कंपाउंडर ने बताया था कि क्रिया-कर्म समाप्त कर लौटेंगे। तेरह दिन के बाद लौटे तो पता चला कि आते ही पुरी...। उसके बाद जब भी आयी आप कहीं-न-कहीं गए हुए थे। बात क्या है?" वह कुर्सी पर बैठ गयी।

"रजनी! मैं बहुत दुःखी हूं। बचपन से जो कुतुबमीनार बना रहा था, पिताजी की मृत्यु के बाद वह अचानक चकनाचूर हो गयी!"

"सो कैसे?"

"मैंने सोचा था, पिताजी मेरे लिए बहुत-सा पैसा छोड़ जायेंगे और उस पैसे से मैं उड़ीसा में दवा की एक बड़ी दुकान और अस्पताल खोलूंगा, जहां अच्छे-अच्छे डाक्टर रहेंगे, नर्सें होंगी और लोगों की सेवा करेंगे, नाम भी होगा, पर मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया!"

"इसमें निराश होने की क्या बात है! पचास-साठ हजार रुपया तो आखिर मेरे हिस्से भी आयेगा ही। उतने से आपका काम चल जायेगा।"

"लेकिन पहले हमारी शादी तो हो!"

"डैडी तो राजी हैं...।"

"राजी नहीं, जिद पर अड़े हैं। हिन्दू रीति से विवाह करने पर जोर देते हैं और तुम्हारी भी वही रट है।"

"आप वेदी पर जाने से इतना डरते क्यों हैं?"

"बात डरने की नहीं, समझने की है। हिंदू विधि से ब्राह्मण और करण का विवाह कभी हो नहीं सकता। कोई पुरोहित इसके लिए राजी

न होगा। इसलिए मेरा आग्रह सिविल मैरिज के लिए है। मगर उसके लिए न तुम तैयार हो और न बंशीबाबू।"

"पिताजी कह रहे थे कि आर्यसमाजी पद्धति से क्यों न कर लिया जाये?"

"समझ में नहीं आता कि सिविल मैरिज होने में क्या हर्ज है? फिर तो शैव विवाह ही बढ़िया। इसमें सिर्फ हृदय का बंधन होता है। वह बंधन शिथिल हुआ कि तुम तुम्हारे और मैं अपने रास्ते। यद्यपि हम दोनों के बीच् वह परिस्थिति नहीं है। हम तो परस्पर एक-दूसरे को चाहते हैं और सदा चाहते रहेंगे।"

रमाकांत की बात सुनी तो रजनी की आंखों से दो बूंद आंसू टपक पड़े।

"अरे! तुम रो रही हो!" रमाकांत कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया।

"मैं जा रही हूं, बाद में आऊंगी।" रजनी ने आँसू पोंछते हुए कहा और चली गयी।

रमाकांत ने रेवेंशा कालेज में तब आइ० ए० में प्रवेश लिया ही था। अजीत और रमेश से परिचय हुआ ही था। रमेश का घर बालेश्वर के देवपुर में और अजीत का घर कटक में था। पहली ही मुलाकात में तीनों में घनिष्ठता हो गयी थी। एक दिन तीनों कक्षा में बैठे थे, प्रोफेसर तबतक आये नहीं थे, एक महिला (वास्तव में छात्रा!) ने बाहर खड़े-खड़े पूछा, "क्या फर्स्ट-इयर जूलोजी की क्लास यही है?"

वह रूपवती नहीं, पर वेशभूषा से आधुनिक लग रही थी। किसी ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया। सब उसे देख-देखकर मुस्कराने लगे। वह अप्रतिम होकर न अंदर आ सकी और न लौट ही सकी। रमाकांत से यह स्थिति देखी नहीं गयी। खड़े होकर उसने कहा, "हां जी, यही है।"

इस पर सारी कक्षा "हो ! हो !" कर ठहाका मार उठी थी। इस तरह हुआ था रजनी से प्रथम परिचय। कक्षा समाप्त होने पर रजनी ने धन्यवाद देकर रमा को चकित कर दिया था। वह लड़कियों की तरह शरमा गया था। उस दिन रजनी ने और भी कई बातें कही थीं।

फिर कई दिन बाद जब जोर की बारिश हो रही थी और प्रोफेसर ने न आने की खबर भिजवायी थी तो जो दस-बारह छात्र कक्षा में बैठे गप्पें लगा रहे थे, उनमें रजनी, रमेश, अजीत और रमाकांत भी थे।

जाने किस सिलसिले में रजनी का हाथ देखकर रमेश ने कहा था कि उसका दांपत्य जीवन कलहमय होगा, उसके बच्चे नहीं होंगे और उस अध्ययन के लिए वह विदेश जाना चाहेगी।

इस पर हर मामले में अपनी अलग राय रखने वाले अजीत ने कहा था कि इस तरह की भविष्यवाणी के लिए हाथ देखने की कोई जरूरत नहीं, केवल शरीर देखकर ही बताया जा सकता है। मोटी औरतें प्रायः निस्संतान होती हैं; प्रोटीन की मात्रा अधिक होने से बच्चे नहीं होते। मुटापा और शारीरिक सौंदर्य न हो तो दांपत्य जीवन कलहमय होगा ही और खूब धनवान होने से विदेश जाने की इच्छा होना भी स्वाभाविक है।

इसे लेकर बहुत शोर मचा था और दुःखित रजनी चुपचाप वहां से खिसक गयी थी। सहानुभूति से भरा रमाकांत उसके पीछे-पीछे गया था और उसने रजनी को रूमाल से आंसू पोंछते देखकर आश्वासन दिया था। तब रजनी ने कहा था, "मुझे रमेशबाबू के कहे का दुःख नहीं है। दुःख है अजीतबाबू के कहने पर। क्या मैं सचमुच इतनी मोटी और बदसूरत हूं ?"

रमाकांत ने फौरन उसे आश्वस्त कर दिया था, "नहीं, आप मोटी नहीं हैं। मैं तो कहूंगा कि खूब स्वस्थ हैं।"

इसके बाद दोनों रजनी की कार में घूमने चले गये थे।

तब से रजनी और रमाकांत पास आते गये। रमाकांत सोचता, उनके बीच केवल परिचय और मैत्री बढ़ रही है ; उधर रजनी इन विचारों में खो जाती कि रमाकांत उससे प्रेम करता है।

बात फैलते देर न लगी और मित्र-मंडली रमाकांत को छेड़ने लगी, मगर रमाकांत ने प्रतिवाद नहीं किया। वास्तव में वह रजनी की ओर खिचने लगा था, उसके प्यार के कारण नहीं; उसे विरासत में मिलने वाली संपत्ति के कारण।

इधर रजनी की सहेलियां उसे रमाकांत के वास्तविक इरादों के बारे में सचेत करने लगतीं तो वह उन्हें यह कहकर फटकार देती कि तुम्हारा जी क्यों जलता है? लेगा तो मेरा ही धन लेगा, तुम्हारा तो नहीं!

फिर एक दिन रजनी ने साहस कर रमाकांत से विवाह वाली बात पूछी थी। वह सिगरेट पी रहा था। प्रश्न सुनते ही उसकी आंखें छोटी हो गयी थीं, धुआं कुछ अधिक देर अंदर रह गया था। काफी देर बाद हंसते-हंसते कह पाया था, "प्रेम की स्वाभाविक परिणति ही विवाह है, इसमें पूछने की क्या बात है?"

कृतज्ञता से रजनी का हृदय भर आया था और रमाकांत से लिपट गयी थी।

"पर हम इन मूर्ख ब्राह्मणों को पुरोहित नहीं बनायेंगे।"

"मतलब?" रमाकांत ने आश्चर्य में भरकर पूछा था।

"हम वाराणसी से पंडित बुलवायेंगे।"

"पर पुरोहित का सवाल ही कहां उठता है? हम तो सिविल मैरिज करेंगे।"

"सिविल मैरिज!" रजनी आश्चर्य में भरी रमाकांत को देखती रह गयी थी।

"नहीं, नहीं, हम दोनों हिंदू हैं। सिविल मैरिज क्यों!"

"क्या फालतू बातें कह रही हो!"

"मैं जो कहती हूं, वही होगा।"

रमाकांत के लिए गुस्से में फूं-फां करने के अलावा और कोई चारा नहीं रह गया था।

पन्द्रह

स्नेह की सगाई के बाद कई दिन बीत गये, न देवीपाद उधर गया और न स्नेह इधर आयी।

स्नेह के विवाह की तिथि निकट आती जा रही थी। फागुन सुदी चौथ। बात पक्की होने के बाद से स्नेह थोड़ा शरमाकर चलने लगी थी। अंतःकरण का दुःख उसे गला रहा था। कई बार सोचा, बगीचे में जाकर देवीपाद से बातें कर अंतिम फैसला कर लें। कई बार मौका नहीं मिलता, हजार बंधन, चाह कर भी नहीं जा सकती! कभी सुविधा होती तो अभिमान उसके पांव थाम लेता। क्या देवीपाद नहीं आ सकता था? कौन है उसे मना करने वाला? पर कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो स्वयं होकर कुछ करना जानते ही नहीं। उनको लेकर अभिमान करना भी व्यर्थ है। आखिर उसने फैसला किया, अतृप्त आशाओं के खंडहर में जीवन-भर भटकने से एक बार चेष्टा करना बेहतर होगा। स्नेह ने सारा अभिमान, क्रोध और दुःख एक तरफ रख दिया और देवीपाद के पास जाने को तैयार हुई।

आरामकुर्सी पर लेटकर देवीपाद कुछ पढ़ रहा था। उसका चेहरा बुझा हुआ-सा लगता था। अज्ञात आशंका और अंधकार में छिपे भविष्य ने स्नेह को दुर्बल कर दिया। जी चाहा कि लौटकर चली जाये, पर देवीपाद ने उसे देख लिया था।

"अरे स्नेह! बहुत दिनों बाद आयी! विवाह में तो देर है और

तुम अभी से गृहणी बन बैठी !"

हाय रे निष्ठुर ! प्रतिदिन जो तेरी बात सोचते-सोचते सो भी नहीं सकती, उसी से पूछ रहा है, जैसे कुछ जानता ही नहीं। क्या तू पत्थर है ? मानवी स्नेह, समवेदना तुझ में लेश भी नहीं ?

स्नेह क्या जवाब देती ! पास आकर खड़ी हो गयी।

"बैठ तो जाओ।" देवी ने कहा।

"देवी, मैं विवाह नहीं करूंगी।" अंगुली में पल्लू लपेटते हुए स्नेह ने पूरा जोर लगाकर कहा।

"क्यों, क्या बात है ? विवाह क्यों नहीं करोगी ?"

"मैं तुमसे विवाह करूंगी।" स्नेह ने हृदय में उठते शूल को रोक-कर कहा, पर तबतक व्यथा आंसू बनकर पिघल गयी थी।

"मुझसे..." देवीपाद चौंक पड़ा।

"हां, तुमसे। तुम समझते क्यों नहीं देवी कि मैं तुम्हें चाहती हूं, सिर्फ तुम्हें।" स्नेह की आंखों में धुंध छा गयी, लगातार आंसू बहने लगे। कातर कंठ से बोली, "देवी क्या मैं तुम्हारे लायक नहीं हूं ? तुम मुझे बचपन से देखते आ रहे हो, मेरे गुण, मेरा स्वभाव, व्यवहार, तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है।"

"तो मां का अनुमान ठीक ही था ?" स्नेह को संयत करने के लिए देवीपाद ने कहा।

देवीपाद के इस प्रश्न से धुंध छट गयी, आंसू थम गये, आँखों के सामने सब स्पष्ट दीखने लगा। गर्व में भरकर बोली, "तुम्हारी मां का यही तो अनुमान था कि मैं गरीब की बेटी अमीर के घर आने की इच्छा रखती हूं और मुझसे कोई शादी नहीं करता और मेरी उम्र बढ़ती जा रही है और मैं तुम्हें फंसाने की कोशिश कर रही हूं। मैं हीन चरित्र..."

स्नेह का गला भर आया। क्रोध से उसकी सांस तेज हो गयी। ओठों से आवाज नहीं निकल रही थी, पर वे बराबर फड़फड़ा रहे थे। सारा

शरीर थरथरा रहा था। देवीपाद ने कुछ नहीं कहा, खड़ा रहा। थोड़ी देर दोनों अपने-अपने विचारों में खोये रहे। अंत में स्नेह ने ही जड़ता तोड़ी। स्वर थोड़ा कोमल हो गया। अनुनय करते हुए कहा, "देवी, यह साधारण-सी बात हम दोनों के जीवन और आशा-आकांक्षाओं को नष्ट कर देगी। देवी, तुम मुझे अपना लो। तुम पर सब-कुछ निर्भर है, तुम सब-कुछ बदल सकते हो। मुझे तुम्हारा धन नहीं चाहिए, मैं तुम्हें चाहती हूं, सिर्फ तुम्हें। तुम भीख मांगोगे तो तुम्हारे साथ मैं भी भीख मांग लूंगी; तुम साधना करोगे तो तुम्हारे साथ साधना करूंगी। तुम्हारे रास्ते में कभी बाधक नहीं बनूंगी। मैं तुम्हें प्यार करती हूं, देवी!"

देवीपाद सुनता रहा, फिर कुछ देर बाद बोला, "नारी इतनी दुर्बल होती है, इतनी भयानक, इतनी नग्न हो सकती है, मैंने कभी कल्पना नहीं की थी। छिः छिः..."

"देवी!" स्नेह की आवाज में सिंहनी की गरज थी। मैं तुम्हारी बात का खंडन नहीं करती; किंतु याद रखो, तुम अपने मन की बात स्वयं नहीं जानते; जिस दिन जान पाओगे, आज की मूर्खता के लिए तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़ेगा।"

स्नेह की गर्जना से देवीपाद का चेहरा कुम्हला गया। स्नेह तेजी से चली गयी। देवीपाद उसकी ओर आश्चर्य से देखता रह गया, मानो कुछ समझ न पाया हो।

स्नेहप्रभा ने अपने भविष्य का आकलन किया या मुझे शाप दिया? स्नेह के लौट जाने के बाद देवीपाद बहुत देर तक सोचता रहा, परंतु किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाया। उस रात वह सो न सका। बार-बार स्नेह की कही हुई बातें उसे याद आतीं और वह विह्वल हो जाता। इसी तरह आधी रात हो गयी। अंत में वह उठा और चुपचाप स्टेशन की ओर चल दिया।

स्टेशन पहुंचा तो ट्रेन खड़ी थी। देवीपाद डिब्बे में खाली बेंच देखकर सो गया। अंतर्द्वंद्व से मुक्ति न मिली तो उसने नींद में समाधान

खोजा।

सवेरे आठ बजे नींद खुली तो भूख भी जाग उठी थी, पर उसकी जेब में तो एक पैसा भी न था। घर बहुत दूर पीछे छूट चुका था। अपने सारे भूतकाल से नाता तोड़कर वह एक अनिश्चित यात्रा पर चल पड़ा था। एक-दो-दिन की यात्रा तो थी नहीं। घर से हमेशा के लिए नाता टूट चुका था।

उसने देखा, डिब्बे में सभी लोग कलेवा करने में जुटे थे—चना, पापड़, मूड़ी, चिवड़ा, खा रहे थे। देवीपाद को जोरों की भूख लगी थी, पर खाने को कुछ न था। चुपचाप खिड़की के बाहर सिर निकाले आकाश की ओर देखने लगा। गांव, तालाब, बगीचे सब पीछे की ओर भागते हुए दीख रहे थे और उसे अपने गांव, स्नेह और बगीचे की याद दिला देते थे।

आदमी को घर-संसार से इतना मोह और आकर्षण क्यों होता है? भोजन और नारी, दोनों उसे क्यों खींचते हैं? एक पेट की भूख है, दूसरी वासना की। दोनों माया के दो पैर हैं, जिनपर सारा संसार टिका है। इन दोनों का त्याग ही संसार का त्याग है। संसार-त्यागी को भूख और यौन-क्षुधा, दोनों पर कड़ी नजर रखनी होगी। भूख को नियंत्रित करना होगा। पर भोजन के बिना तो आदमी मर जायेगा, वह आत्महत्या होगी...

रेल अपने अद्‌भुत यंत्र-संगीत के साथ चली जा रही थी। देवीपाद खिड़की से मुंह निकाले सोच रहा था, वह आत्महत्या तो नहीं कर रहा? खाना कहां से आयेगा? कानी कौड़ी पास में नहीं है, न टिकट ही है। ओह! फिर विचार भोजन की ओर मुड़ गये! सब व्यर्थ की बातें हैं। क्या घर में रहकर साधना नहीं होती? परंतु घर कहेंगे किसे? आदमी घर और बाल-बच्चों से भी अधिक प्रेम धन को करता है। धिक्कार है उस धन को, जिसके लिए बड़े भाई ने मां से कलह किया! शायद स्नेह भी इसी धन के लिए उससे विवाह करने को उत्सुक थी।

सहसा स्नेह की छवि उसकी आंखों में कौंध गयी। आज पहली बार उसे लगा, स्नेह देखने में सुंदर थी...रूप का मोह...देवीपाद को नींद का झोंका आ गया।

कहना मुश्किल है कि हावड़ा स्टेशन के कोलाहल ने उसकी नींद तोड़ी या किसी ने सोया देखकर जगा दिया था। उतरने के लिए सारे डिब्बे में रेल-पेल मची हुयी थी, सब अपना-अपना सामान संभाल रहे थे। सबके अंत में वह डिब्बे में से उतरा। सिर्फ धोती और कमीज पहने था। पास में टिकट भी न था। बाहर कैसे निकलेगा? पहली बार हावड़ा देख रहा था, पर सारा माहौल परिचित-सा लगा। कुछ कदम चलते ही टिकट-कलेक्टर ने अटकाया। "आगे दोस्त के पास है," कहकर वह तेजी से आगे बढ़ गया। इस बीच टिकट-कलेक्टर किसी और से उलझ गया था।

फाटक के पास बहुत भीड़ थी। टिकट जांचे जा रहे थे। फाटक आधा बंद था। कुछ क्षण देवीपाद एक ओर खड़ा भीड़ को देखता रहा। बाद में उसी में मिल गया। दरवाजे के पास जोरों की धक्का-मुक्की हो रही थी। जब देवीपाद का मौका आया, टिकट-कलेक्टर की सुने बिना, उसने अपने आगेवाले कुली से कहा, "चलो, चलो, सामान न गिर जाये।" फिर टिकट-कलेक्टर को सुनाई पड़े, इस अंदाज में पीछे देखकर बोला, "सत्यव्रत, टिकट दे देना!"

पीछेवाले सज्जन दो टिकट दे रहे थे। एक अपना और दूसरा पत्नी का। टिकट-कलेक्टर ने पूछा, "आगेवाले सज्जन का टिकट आप दे रहे हैं न?"

"मैं नहीं जानता उन्हें।" उनका उत्तर था।

और इस बीच देवीपाद भीड़ में खो चुका था। लोग एक के पीछे एक धक्का देते हुए बढ़ रहे थे।

•

सोलह

जिस कुली को देवीपाद ने सामान न गिराने की हिदायत दी थी उसके साथ वाले सज्जन आगे-आगे चल रहे थे। प्लेटफार्म से निकलकर देवीपाद कुछ ही दूर गया था कि उन सज्जन से सामना हो गया। कुली सामान लिये पास खड़ा था। वे उसे देखकर मुस्कराये और टैक्सी के लिए कतार में खड़े यात्रियों की ओर बढ़ गये।

देवीपाद नया-नया था। उसे डर तो नहीं लगा, पर अनजान जगह में होने के कारण संकोच जरूर हो रहा था। वह विपरीत दिशा में बायीं तरफ चलने लगा। उसे सावधान होकर चलना पड़ रहा था। प्रतिक्षण कोई ट्रक या टैक्सी गुजर रही थी। खूब चौड़ा रास्ता और रास्ते के दोनों ओर विशाल इमारतें। उसे फिर भूख लग आयी थी। घर पर होता तो अबतक नित्य-कर्म समाप्त कर स्वाध्याय में लग जाता। मां और शिव अवश्य दुखी हुए होंगे। घर में इतने दिन से सोना, उठना-बैठना जो करता था। जो हो, अच्छा तो घर ही है। अब किधर जायेगा ? आज अगर पिता जीवित होते तो उसे इस तरह घर क्यों छोड़ना पड़ता ?

सामने भीड़ के कारण दो-तीन ट्रक रुक गये थे। उसके विचारों की कड़ियां टूट गयीं। ट्रक से बचकर आगे बढ़ गया। अचानक उसे अनुभव हुआ, जैसे कोई उसका पीछा कर रहा है। यह खयाल आते ही वह मुड़ा। वही अपरिचित उससे चार-छ: कदम पीछे चल रहे थे। उसके मुड़ते ही वे थोड़ा अचकचा गये, पर दूसरे ही क्षण उसके पास आ गये और बोले, "क्षमा करेंगे, आपको होटल चाहिए ?"

क्या उत्तर दे, कुछ निश्चित नहीं कर पाया।

"सामने जो होटल आप देख रहे हैं, मैं उसका मैनेजर हूं।"

देवीपाद ने देखा कि वे लोग 'तृप्ति होटल' के सामने खड़े हैं।

"कुछ दिन हुए आपकी शकल का मेरा बेटा कहीं चला गया। उसका दिमाग थोड़ा खराब था। आपके पीछे चलते हुए मैं सोच रहा था कि शायद

वही है; पर जब आपने मुड़कर देखा तो फर्क समझ में आ गया।"

"ओह !"

"लगता है, कलकत्ते में आपका कोई परिचित नहीं है। शायद पहली बार आ रहे हैं ?"

"आपने कैसे जाना ?"

"आप स्टेशन से कलकत्ते की ओर न जाकर बेलूर की तरफ जा रहे हैं, कलकत्ता तो उधर रह गया।"

देवीपाद उधर देखने लगा, जिधर उन्होंने इशारा किया था। तभी वे सज्जन आगे बोले, "अभी तो आप नित्यकर्म करेंगे। रात-भर की थकावट भी होगी। यह मेरा होटल पास में ही है। कलकत्ता जितने दिन रहना चाहें, मेरे यहां ठहरिये। आपको कोई असुविधा नहीं होगी। आपको देखता हूं तो मुझे अपना बेटा याद आ जाता है।"

"लेकिन मेरे पास तो पैसा-वैसा कुछ नहीं है।"

"जानता हूं। टिकट-कलेक्टर को टिकट देते समय ही मैं जान गया था।" सज्जन ने हंसकर कहा और देवीपाद की पीठ थपथपा दी। देवी का मुंह रक्तिम हो गया। वे आगे बोले, "मुझे सुकुमारदास बंद्योपाध्याय कहते हैं।"

होटल में आकर देवीपाद ने सबसे पहले भर पेट खाना खाया। मेज के दूसरी ओर सुकुमारबाबू बैठे आर्डर दे रहे थे। खा-पीकर दोनों दो-तल्ले पर चले गये। होटल की सजावट देखकर देवीपाद चकित रह गया। लोगों का खूब आना-जाना हो रहा था, पर सारे होटल में नीरवता थी। इन लोगों के सीढ़ी चढ़ते समय एक सज्जन कीमती सूट पहने उतर रहे थे। सुकुमार-बाबू ने देखते ही कहा, "पीतांबर, आधे घंटे बाद मेरे चैंबर में आ जाना। कानपुर के बारे में बातें करनी हैं।"

"अच्छा, सुकुमारदादा।"

जिन्हें पीतांबर कहकर संबोधित किया गया था, वे सज्जन देवीपाद की ओर देखने लगे थे, देवीपाद के विस्मय की सीमा न थी। तब सुकुमार-बाबू ने पूछा, आप क्या उन्हें पहचानते हैं ?"

हमारे गांव के पीतांबर रथ से इनका चेहरा बहुत मिलता है। पर पीतांबर रथ यहां कहां से ? वे तो बहुत गरीब आदमी हैं। यहीं कलकत्ते के किसी होटल में रसोइए का काम करते हैं।"

सुकुमारदास सुनकर हंस पड़े। बोले, "इनका नाम भी पीतांबर रथ है। शायद आपके गांव के ही हों। यहां तो कई दिनों से हैं।"

"आश्चर्य है! हमने तो कभी सोचा भी नहीं था कि इतने अच्छे ढंग से रहते होंगे।"

दो तल्ले का ५ नंबर वाला कमरा देवीपाद के लिए ठीक किया गया था। कमरे में पलंग था। बिस्तर, तकिया, चद्दर और मसहरी सबकी व्यवस्था थी। एक डाइनिंग टेबुल थी। बेडरूम से सटा हुआ बाथरूम था। बेडरूम खोल देने पर कांच के उस पार साफ दिखाई देता था। देवीपाद ने देखा कि होटल के लान में चार एंग्लो इंडियन युवतियां टेनिस खेल रही थीं।

"अच्छा, देवीपाद बाबू! मैं अब चलता हूं। यह 'कालिंग बैल' का स्विच है, जरूरत पड़ने पर दबाने से नौकर हाजिर हो जायेगा। आप आराम कीजिए। अंदर से किवाड़ बंद कर लें।"

सुकुमारबाबू के जाते ही देवी पलंग पर निढाल होकर लेट गया। उसे अचरज हो रहा था कि कहां-से-कहां पहुंच गया। घर से फूटी कौड़ी लेकर नहीं चला था, मारे भूख के तड़प रहा था; पर किसी की भावुकता ने उसे ऐश्वर्य लोक में पहुंचा दिया। सब भाग्य का ही खेल है!

उसने करवट बदली। खिड़की खुली थी। कांच के उस पार खेलती हुई युवतियों पर पुनः निगाह पड़ी। सभी सुंदर और स्वस्थ थीं। सहसा स्नेह की याद हो आयी। उसकी दोनों आंखें कितनी बड़ी और काली हैं! शरीर कितना लोचदार, पर चेहरे पर कितनी विनम्रता है। अगर चाहता तो उससे विवाह कर सकता था। स्नेह उसकी पत्नी हो जाती। छिः ...छिः! वह क्या सोच रहा है! अब वह परायी स्त्री है।

'क्रीं...क्रीं...क्रीं' कालिंग बैल बज उठी। नींद टूट गयी। आंख मल-

कर दरवाजा खोला, तो बाहर सुकुमारबाबू मुस्कराते हुए खड़े थे।

"बहुत सोये! मैं बीच में आया था, पर यह सोचकर कि थके होंगे। उठाया नहीं।"

देवीपाद ने कुछ नहीं कहा, पुनः पलंग के पास चला गया।

"हां...हां, फिर सोने का इरादा है? सवा चार बज गये। हाथ-मुंह धो लीजिए। शहर का चक्कर लगा आयें। आप तो कभी कलकत्ता आये नहीं हैं।"

देवीपाद मुंह धोने जा रहा था तो सुकुमारबाबू ने घंटी बजाई।

"क्यों? किसे बुला रहे हैं?" देवीपाद ने रुककर पूछा।

"आपके लिए दो-तीन जोड़े कपड़े मंगवाने हैं।"

वास्तव में उसके पास पहनने को कुछ न था। घर से सिर्फ धोती और कमीज पहन कर चला था। कृतज्ञता से सिर झुक गया, पर मन-ही-मन अपने आप पर गुस्सा भी आया। क्या हर समय इनकी दया पर निर्भर रहना होगा? वह तो चला था संन्यासी बनने के लिए और यहां भोग-विलास में आ फंसा! इससे तो अच्छा है कि घर ही लौट जाय। स्नेह का विवाह रोका जा सकता है। ओह! वह क्या सोचने लगा? स्नेह का विवाह तो हो चुका है। नहीं, वह घर नहीं लौटेगा। काशी या उत्तर काशी चला जायेगा, गुरु की खोज में...

"रहने दीजिए, मुझे कुछ नहीं चाहिए।" उसने सुकुमारबाबू से कहा।

लेकिन तबतक बैरा नाप लेकर जा चुका था। वह बाथरूम से लौटा तो शर्ट-पेंट मेज पर रखे थे।

कपड़े पहनकर दोनों सीढ़ियां उतर रहे थे कि सामने एक तरुणी ऊपर चढ़ती मिल गयी। सुकुमारबाबू से बोली, "हैलो दादा! इधर मेरा काम न हो तो घर हो आना चाहती हूं।"

"जा सकती हो। पर अपने मित्र से परिचय तो करा दूं। आप हैं देवीपाद षड़ंगी, उड़ीसा से नये ही आये हैं। और ये हैं मिस कल्पना पालित।

होटल में ही काम करती हैं।"

कल्पना ने तपाक से हाथ बढ़ाकर देवीपाद का हाथ झिंझोड़ दिया। देवीपाद विमूढ़-सा रह गया।

कार में बैठने के वाद सुकुमारवावू ने ड्राइवर से कहा, "मेट्रो।" फिर देवीपाद से वोले, "आपने सिर्फ नाम वताया, अपने वारे में और कुछ तो वताया नहीं।"

देवीपाद ने वचपन से अवतक की सारी वातें निःसंकोच वता दीं।

सुकुमारवावू ने कहा, "तो आपने संन्यासी वनने के लिए घर छोड़ा, मगर मेरा खयाल है कि कलियुग में संन्यास वर्जनीय है। फिर आज परिस्थितियां प्रतिकूल हैं तो कल अनुकूल भी हो सकती हैं। भोग आपने जाना नहीं तो स्वाभाविक रूप से वैराग्य का उदय कैसे होगा? गार्हस्थ्य के वाद वानप्रस्थ और संन्यास हैं। आपकी मनोवृत्ति अनासक्त नहीं है। आप अत्यंत अभिमानी और उच्चाभिलाषी हैं। यश पाने के लिए संन्यास ही एकमात्र मार्ग नहीं है। कर्मयोग भी एक रास्ता है। आपको वही अपनाना चाहिए। विश्व आप के नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रहा है।"

"सर, मेट्रो।" ड्राइवर ने कहा।

देवीपाद उनके तर्क से अभिभूत हो गया। चाहने लगा कि वे इस तरह बोलते रहें और वह सुनता रहे।

कार के रुकने पर देवीपाद बाहर आ गया। सामने दीवार पर वड़ा-सा पोस्टर चिपका था। एक युवक डाइनामाइट से पुल तोड़ने की चेष्टा कर रहा था। टिकट लेने के लिए लोग लाइन लगाए खड़े थे।

सत्रह

"रमाकांतवावू नहीं हैं?"

"नहीं हैं। घंटा-भर हुआ, कहीं गये हैं।"

"कहां गये, कुछ वता सकते हैं?"

"शायद गर्ल्स स्कूल की तरफ"

"लड़कियों के स्कूल? क्यों?"

उनकी जान-पहचान की कोई लड़की कटक से पढ़ने के लिए आयी है। उसके साथ गये हैं।"

"अच्छा, मैं आयी थी, उन्हें वता देना।"

रजनी ने कार गर्ल्स स्कूल की ओर मोड़ दी। दोपहर के वारह वज रहे थे। घर से सोचकर निकली थी कि रमाकांत को खींच लाऊंगी; कुछ वाजियां केरम की ही सही; गरमी की इतनी लंबी दोपहर और कटेगी भी कैसे? रमाकांत के कमरे में पंखा नहीं, वेचारे हैरान हो रहे होंगे, खेलने के वाद वहीं थोड़ा आराम भी कर लेंगे। वड़ी आशा लेकर आयी थी, सव वेकार हो गया।

भीड़ से वचती हुई वह कार चला रही थी। एक साइकिल-रिक्शा से बचाते-वचाते देखा, रमाकांत के साथ कोई युवती बैठी है और दोनों मधुर वार्त्तालाप में मग्न हैं। एक निगाह इतना ही देखकर रजनी आगे निकल गयी। थोड़ा आगे जाने पर ध्यान आया, पता नहीं, लड़की देखने में कैसी है। गाड़ी की स्पीड वढ़ाकर सोचने लगी, लड़की के साथ संभवतः रमाकांत की घनिष्ठता है। दोनों एक ही गांव के हैं, एक ही जाति के और शायद चिट्ठियों का आदान-प्रदान भी होगा। जितना देखा है, उससे लगता है कि लड़की सुन्दर होनी चाहिए। छींट की साड़ी पहने थी। शायद एक चोटी छाती पर पड़ी थी, दूसरी पीठ पर। वाह! गांव से आते ही खूव फैशन सीख गयी! जरूर असाधारण सुंदरी और गर्विष्ठा है। रजनी के मन में उथल-पुथल मच गयी। उसने मोटर का रुख मोड़ा और रमाकांत के घर की तरफ चल दी। शायद वे लोग लौट आये होंगे और बैठे हंस-हंसकर वातें कर रहे होंगे।

किसी को आवाज न देकर वह सीधी रमाकांत के दवाखाना में घुस

गयी। कम्पाउन्डर दवा बना रहा था। रजनी को इस प्रकार अचानक घुसते देखकर वह बेचारा सकते में आ गया।

रजनी ने देखा, एक अत्यंत रूपवती किशोरी कुछ कह रही थी और रमाकांत प्रसन्न मुद्रा में सुन रहा था। अन्य दिनों की अपेक्षा आज रमाकांत बहुत प्रसन्न और अधिक सुंदर भी लग रहा था। रजनी को देखते ही उनकी बातें बन्द हो गयीं। किशोरी हड़बड़ा गयी और रमाकांत दोषी-सा अनुभव करने लगा। कुछ क्षण किंकर्त्तव्यविमूढ़ रहकर जब रमाकांत बोला तो किशोरी आश्चर्य में भरकर उसकी ओर देखने लगी।

"रजनी, मैं तुम्हारे पास नहीं आ सका। कुमारी सुकेशी का नाम लिखवाना था। अरे, परिचय तो रह ही गया। यह है सुकेशी, मेरे गांव के जमींदार गोविंद महापात्र की बेटी, यहां कटक में पढ़ने आयी हैं। आज ग्यारहवीं कक्षा में भरती करवाया है। और सुकेशी, ये हैं मेरी सहपाठिनी और मित्र रजनी देवी।"

दोनों ने एक-दूसरे को नमस्कार किया। फिर रजनी ने पूछा, "आप यहां पढ़ने आयी हैं। अगर मैट्रिक करके आती तो ज्यादा अच्छा रहता।"

मैं भी यही चाहती थी, परंतु पिताजी नहीं माने। उनके दीक्षा-गुरु का भी आग्रह था कि मुझे कटक में पढ़ना चाहिए। इस बार जब रमाकांत बाबू गांव गये तो पिताजी ने इनसे सलाह ली और इनका भी यही राय हुई। यहां मेरे अभिभावक भी यहीं होंगे।" कहकर सुकेशी ने रमाकांत की ओर मधुर दृष्टि डाली।

रमाकांत ने परिस्थिति संभालने का प्रयत्न किया। बोला, "चलो तुम्हें तुम्हारे फूफा के यहां छोड़ आऊं। देर हो जायेगी।"

रजनी उठकर खड़ी हो गई। "आपसे मिलकर खुशी हुई" सुकेशी ने पहले कहा—"कभी-कभी दर्शन होते रहेंगे ?"

रजनी की प्रश्नसूचक मुद्रा के उत्तर में रमाकांत ने कहा, "पहले यही तय हुआ था कि मैं स्थानीय अभिभावक रहूंगा। लेकिन आज ही पता चला कि इनके फूफा बदली होकर यहां आ गये हैं। अच्छा है कि वे ही इस

दायित्व को संभालें। चलो, सुकेशी।"

सुकेशी ने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़ दिये। वदले में रजनी कुछ कह न सकी। वहुत चेष्टा करने पर थोड़ी-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर आ सकी।

रास्ते में सुकेशी ने पूछा, "आपने रजनी से फूफावाला झूठ क्यों कहा?"

रमाकांत ने थोड़ी धृष्टता से कहा, "अरे, मैं तो भूल ही गया कि झूठ बोलना पाप है।"

"आपने मुझे रजनी के बारे में वताया भी नहीं!" सुकेशी ने वच्चे की तरह मचलकर कहा?

"कव कहता? गांव से आये तुम्हें दो ही दिन तो हुए हैं।"

"इन दो दिनों में हम कम-से-कम दस वार तो जरूर मिले होंगे; मैंने वहुत-सी वातें पूछी, आपने वहुत-सी वातें वतायीं, पर रजनी के वारे में कुछ नहीं कहा। क्यों?" सुकेशी के स्वर में अभिमान था।

"जिसका कोई महत्त्व नहीं, उसके बारे में वताता भी क्या?"

"ताज्जुव की बात है! जो वातचीत में इतनी निर्भय हो और विना अनुमति कमरे में चली आये, चाहे आप किसी महिला से ही वात क्यों न कर रहे हों। वह ऐसी-वैसी नहीं हो सकती! और आप कहते हैं कि उसे कोई महत्त्व नहीं देते। जरूर कुछ छिपा रहे हैं।" सुकेशी का स्वर थोड़ा उग्र हो गया था।

रमाकांत ने उसकी ओर देखा और क्षण-भर में सव समझ गया। उम्र सत्रह-अठारह की है तो क्या, वुद्धि विचक्षण है। वह मुग्ध हो गया। गांव में पिता के श्राद्धादि क्रिया-कर्म के वाद वह सुकेशी से परिचित हुआ था। पहली ही भेंट में सुकेशी के सौंदर्य ने उसे चमत्कृत कर दिया था। गोविंद महापात्र ने उसे परामर्श के लिए बुलाया था कि सुकेशी का कटक जाना ठीक होगा या नहीं? सुकेशी को देखने के बाद उसके सौंदर्य से अभिभूत होकर उसने कटक भेजे जाने का पूर्ण समर्थन किया था।

इतना ही नहीं, अपनी ओर से यह भी कहा था कि सुकेशी चाहे तो उसे उच्च शिक्षा भी जरूर दी जाये क्योंकि पढ़ी-लिखी सुशील स्त्रियों का मूल्य उड़ीसा के लोग चाहे आज न समझें, आगे चलकर जरूर समझेंगे। उसके समर्थन से सुकेशी बहुत खुश हुई थी; और गोविंदबाबू ने लड़की को कटक भेजने का पक्का इरादा उसी दिन कर लिया था। इसके बाद सुकेशी ने उसे पत्र लिखा था और उसने उत्तर दिया था। प्रथम भेंट में ही उसे सुकेशी में धर्म-नीति आदि के बंधनों से शून्य केवल एक विशुद्ध नारी का अस्तित्व दिखाई दिया था; और सुकेशी को भी रमाकांत में प्रवृत्तिपरायण बलिष्ठ पुरुष का आभास मिला था। फिर किसी पत्र में दोनों एक-दूसरे के सहसा बहुत निकट आ गये थे। सुकेशी के कटक आने के बाद उसके साथ रहकर और उससे बातचीत करके रमाकांत समझ गया था कि सुकेशी सिर्फ यौवन के ज्वार में नहीं बहती, वह साधारण नारियों से यथेष्ट चपल औ बुद्धिमती भी है।

उस रूप-गर्विता बुद्धिशालिनी की ओर देखते-देखते सहसा रमाकांत के पौरुष ने गर्जना की और एक विचार उसके मस्तिष्क में कौंध गया सुकेशी की दोनों हथेलियों को अपनी मुट्ठी में लेते हुए उसने कहा, "सुकेशी यह बात किसी से न कहना। मां सुनेगी तो प्रलय हो जायेगा।"

रमाकांत ने अचानक हथेली भींच दी थी। सुकेशी चौंक पड़ी। पूछा, "क्या बात है ?"

"मैं रजनी को प्यार करता हूं। वह जाति से करण है। मां के कान में बात पड़ गयी तो हम दोनों का जीवन बरबाद करने में वह पीछे नहीं रहेगी।"

"क्या आप सचमुच रजनीदेवी को चाहते हैं ?"

सुकेशी की हथेली को और जोर से भींचते हुए उसने कहा, "हां सुकेशी, कालेज में प्रथम भेंट से ही हम एक-दूसरे को प्यार करने लगे।"

"मुझे विश्वास नहीं होता, इतनी असुंदर..."

"तुमने किसी को प्यार नहीं किया, सुकेशी। प्यार करने पर जानतीं

कि प्यार सुंदर-असुंदर नहीं मानता, अमीर-गरीब का भेद नहीं करता, जाति-गोत्र नहीं देखता।" जाति-गोत्र पर रमाकांत ने कुछ ज्यादा ही जोर दिया था।

"ओह!" अत्यंत दुःख-भरे स्वर में सुकेशी ने कहा और उसके हाथ से अपनी हथेली को मुक्त कर लिया। सामने देखा तो रिक्शा गर्ल्स स्कूल तक पहुंच चुका था।

सुकेशी को घबराहट में डालकर रमाकांत जोर से हँस पड़ा। रिक्शे-वाले ने मुड़कर देखा और रास्ता चलते लोगों की निगाहें भी उधर उठ गयीं। सुकेशी की कुछ समझ में नहीं आया। फक् चेहरे से वह रमाकांत को देखती रह गयी।

"कैसा रहा?" रमाकांत ने पूछा।

"क्या?"

"मेरा अभिनय।"

"अभिनय?"

"नहीं तो क्या मैं सचमुच रजनी को प्यार करता हूं?"

"ओह! मुझे तो आपकी बात का विश्वास हो गया था। वाह! आप तो खूब नाटक करना जानते हैं।"

"सुकेशी, तुम ही सोचो, रजनी को भला कोई चाह सकता है?" फिर उसे तुरंत खयाल आया कि रजनी के रूप को धिक्कारने पर सुकेशी कहीं यह न सोच बैठे कि वह नारी के शरीर को ही चाहता है, उसके गुणों को नहीं, अतः तत्काल संशोधन किया, "प्यार बड़ा-विचित्र होता है। इसकी लीला महिमा आसानी से समझ में नहीं आती। कभी-कभी तो आदमी ऐसी जगह दिल दे बैठता है, जहां हृदय खोलकर कहने का भी चारा नहीं होता। देखो न, 'मैं तुम्हें प्यार करता हूं।' एक छोटा-सा वाक्य है, पर समाज के नीति-नियम इतने कड़े हैं कि मुंह खोल कहा नहीं जा सकता। साथ रहेंगे, साथ घूमेंगे, साथ बैठेंगे, दिल जलता रहेगा, पर कह न सकेंगे। ओह! इसमें जो कष्ट..." रमाकांत का मुंह पीड़ा से विवर्ण हो उठा।

"रमाकांत बाबू, आप बहुत भावुक हैं।"

"होस्टल आ गया। रिक्शेवाले, यहीं रोक दो।" रमाकांत ने कहा और दोनों उतर गये।

"मैं चलकर क्या करूंगा! शाम को आऊंगा, अभी थोड़ा काम भी है।"

"हां, रजनीदेवी प्रतीक्षा कर रही होंगी।" सुकेशी हँस दी।

"अरे! वह बात तो मैं भूल ही गया था!"

अठारह

देवीपाद ने कलैंडर की ओर देखा। उसे कलकत्ता आये छः महीने हो गये थे। इन छः महीनों में उसमें बड़ा परिवर्तन हो गया था। टाई की गांठ ठीक करते हुए वह सोचने लगा कि आदमी अपनी गलती कब और किस प्रकार ठीक करेगा, कोई कल्पना नहीं कर सकता। सुकुमारबाबू की शिक्षा से उसने बहुत कुछ सीखा और अपने को बदला था। सुकुमारबाबू उसके लिए नवीन जीवन-पथ में आलोक-स्तंभ की तरह सिद्ध हुए थे। उनका अगाध पांडित्य और तर्क अकाट्य होते थे।

बैंक कारोबार को लेकर वे दिल्ली गये थे। साथ में नोरा और लीना दो एंग्लो-इंडियन बालाएं भी गयी थीं। दो से तो काम चलेगा नहीं, पर दिल्ली में होटल की शाखा थी और वहां के कर्मचारी मदद करेंगे। देवीपाद ने साथ जाने का आग्रह किया था, पर नये रंगरूट को साथ ले जाना सुकुमार ने उचित नहीं समझा। उनका कहना था कि छोटे केसों में सफलता दिखाने के बाद ही बड़े केस की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है।

सुकुमारबाबू का देशव्यापी व्यवसाय था और उनके अधीन भिन्न-भिन्न जगहों पर सैंकड़ों लोग काम करते थे। व्यापार के स्वरूप और उसकी

प्रकृति आदि के बारे में देवीपाद जरा देर से समझ सका था, किन्तु जब समझा तो तृप्ति होटल और सुकुमारदादा को छोड़ने की उसकी इच्छा नहीं रह गयी थी। सुकुमारबाबू ने समझाया था, देखो बाबू, संसार एक पहेली है, जिसे विभिन्न ज्ञानियों ने भिन्न-भिन्न ढंग से सुलझाया है। मगर सभी इस बात पर एकमत हैं कि स्वाधीनता मानव के लिए परमावश्यकऔर बहुत बड़ी चीज है। वास्तव में स्वाधीनता के बिना व्यक्तित्त्व का विकास नहीं होता। धर्म, नैतिकता, नियम, कानून और शासन-प्रशासन ने मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया है। सरकार का काम है विदेशी आक्रमण और घरेलू अव्यवस्था से देश को बचाये रखना। सरकारें व्यक्ति से इसकी भारी कीमत वसूल करती हैं। उसकी स्वतन्त्रता-स्वच्छंदता को छीन लेती है। इसलिए हम लोग अराजकता के हिमायती हैं। हमारा विश्वास है कि हर मनुष्य सत् है और उसे पूर्ण स्वाधीनता मिले तो वह सत्कार्य ही करेगा। समाज में असद् आचरण, विशृंखलता आदि नियम-कानून से ही बढ़ते हैं। पुलिस की संख्या-वृद्धि के साथ-साथ चोरों की संख्या भी बढ़ती जाती है। घर में सती नारियां होते हुए भी मुहल्ला वेश्याओं से भर जाता है। क्यों ? नैतिक नियमों की कमी के कारण नहीं, उनकी प्रचुरता के कारण। वास्तव में शासन सरकार द्वारा नहीं, मानव की अन्तरात्मा का होना चाहिए···ठहरो, कोई प्रश्न मत पूछो ! तुम शायद जानना चाहते हो कि यह मेरा मत है या किसी ज्ञानी पंडित ने भी इसका समर्थन किया है ! रूसो का नाम सुना है ? वह राष्ट्र को पाप और दुर्बलता का प्रतीक समझता है। जैफरसन के मतानुसार जो राष्ट्र जितना कम शासन करता है, वह उतना ही अच्छा शासन है। गोडविन का कहना है कि राष्ट्र या सरकार के बिना भी मनुष्य सुख, स्वच्छंदता और शांति से चल सकता है। आज अगर राष्ट्र का लोप हो जाय तो मनुष्य चरित्र और बुद्धि से इतना उन्नत हो जाय कि तुम कल्पना भी नहीं करसकते। टाल्स्टाय, दोस्तोवस्की, क्रोपाटकिन 'बैक्वीन' एमरसन, गांधी आदि विश्व के सभी महामानवों का यही मत है। पर वे लोग केवल विचारक थे—बुद्धिजीवी। उनका कार्य था विचार करना, चिंतन

करना। कल्पना को साकार करने के लिए उनके पास न शक्ति थी और न साहस। उस काम को हम करेंगे। इसलिए हम लोगों ने अराजकतावादी दल का गठन किया है। हमारा लक्ष्य है पूर्ण स्वाधीनता, समस्त मानव-समाज की सर्वत्र संपूर्ण स्वाधीनता। भविष्य के बारे में हमारी कल्पना है :

न राज्य न च राजोऽसीत न दांडेय न च दांडिक :।

धर्मेणैव प्रजात्सर्वा रक्षंतिस्म परस्परम् ॥"

सुकुमारबाबू की आंखों में उज्ज्वल आभा चमक उठी थी। वे भावातिरेक के कारण चुप हो गये थे। देवीपाद अभिभूत होकर देखता रह गया था—निर्वाक्, निस्पंद, निश्चल, निश्चेष्ट। उसे लगा, मानो उसकी आत्मा बचपन से ही ऐसे गुरु की खोज में थी, पर पा नहीं रही थी। उसे जिस सत्य की तलाश थी वह किसी पुस्तक में मिल नहीं रहा था। आज उसे सत्य और गुरु दोनों ही मिल गये थे।

अब सुकुमारबाबू उसके आदर्श थे। वे प्रातः चार बजे उठते, देवीपाद भी उनके साथ चार बजे उठता; वे रात को दस बजे सोते, वह भी उसी समय सोता, वे गीता का स्वाध्याय करते, देवीपाद भी करता। उन्हें चरखे पर सूत कातते देख देवीपाद ने भी सूत कातना सीख लिया था। पर उसे खद्दर पहनने से सुकुमारबाबू ने मना कर दिया था। इसलिए वह सदा साहबी पोशाक में रहता था।

पार्टी के सम्बन्ध में उसे शेष बातें बताने का भार ग्रेटा और सोफी को सौंपा गया था। सोफी ने उसे एक बार जापानी जूडो सिखाकर अचानक चूम लिया था। देवीपाद उसके इस व्यवहार से चौंक कर उछल पड़ा था। उसे खीज भी हुई थी। पर सोफी ने समझाया था, "मित्र, इस तरह पुरानी लकीर के फकीर बने रहे तो क्रांतिकारी नहीं बन सकोगे। मैं तुम्हारी मित्र हूं। तुम्हारे जूडो की चतुराई देखकर खुशी से चुम्बन ले लिया, तो गुस्सा होने की क्या जरूरत !" अन्त में देवीपाद को सोफी से क्षमा-याचना करनी पड़ी थी।

बंदूक चलाना पीतांबर सिखा रहा था। इसी तरह वह क्रमशः कई बातें

सीखता जा रहा था—कुछ सुकुमारदादा से सीखीं और कुछ दूसरों से।

तीन दिन से सुकुमारबाबू दिल्ली गये हुए थे। देवीपाद ने टाई बांध ली तो ड्राइविंग सिखाने वाली मिस ग्लोरिया पालित दरवाजे को धक्का मारकर अंदर आ गयी।

"हेलो, देवीपाद! आप अबतक तैयार नहीं हुए? खेल का वक्त हो गया।"

"सब काम हो गया। बस जूते पहन लूं।"

दोनों कार में निकले, ग्लोरिया कार चला रही थी।

"ग्लोरिया, आज मन कुछ उखड़ा-सा लगता है। पिछली बातें याद आ रही हैं।" देवीपाद ने खिन्न होकर कहा।

"घर की याद आयेगी नहीं? मैं तो शुरू से ही कहती आ रही हूं कि दादा जो कहते हैं, उसका अक्षरश: पालन करने की कोई जरूरत नहीं। उनके लिए उग्र तपस्या संभव है, वे ठहरे ऋषिप्राण मानव। आप क्यों व्यर्थ अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं? आपका स्वभाव वैसा नहीं है। स्वधर्म और स्वभाव का अनुसरण करने की स्वाधीनता तो होनी ही चाहिए। इसीलिए तो हमारा संगठन है। हां, स्वभाव का अनुसरण करते समय देखना होगा कि वह साधारण धर्म और नीति का अतिक्रम न कर बैठे। जीवन का मधुपान करने की मेरी इच्छा है। मुझे मेरी इच्छा पूरी करने की स्वाधीनता मिलनी चाहिए। सुकुमारबाबू में एक दोष है। वह यह कि वे सबको अपनी तरह संन्यासी बना देना चाहते हैं; पर इतनी गनीमत है कि किसी के साथ जबर्दस्ती नहीं करते। आप उस पचड़े में क्यों पड़ते हैं? यह सच है कि हममें कितने ही संन्यासी का जीवन-यापन करते हैं, पर कई महान भोगी भी हैं। यहां सब बातों की स्वाधीनता है। बात इतनी-सी है कि जो जैसा चाहे, करे और चले, उसकी कर्मठता में व्यवधान नहीं होना चाहिए।"

इस शिक्षिका ने देवीपाद को पहले भी एक-दो बार इसी प्रकार की शिक्षा दी थी। उसकी बात देवीपाद को जंचती भी थी। पर सुकुमारबाबू जबतक कलकत्ते में रहते, उनका व्यक्तित्व उसे आच्छन्न किये रहता। अतः

उसने ग्लोरिया के भोगवादी दर्शन को कभी साकार करने की चेष्टा नहीं की थी। पर उस दिन सुकुमारबाबू कलकत्ता में नहीं थे।

"क्या सोच रहे हैं ?" ग्लोरिया ने पूछा।

"कुछ नहीं।" कह कर देवीपाद ने ग्लोरिया की तरफ देखा। वह उसके भोगवाद की छाप मानो उसके शरीर पर खोज रहा था। पर संसार की किसी भी नारी की तरह वह भी एक नारी ही दिखाई पड़ रही थी।

ग्लोरिया की सुन्दर नाक पतली थी, जिसका अग्र भाग थोड़ा ऊंचा उठ गया था, अनेक यूरोपियन लड़कियों की नाक की तरह। चटुल गंडस्थल और कटे बालों की स्वर्णिम लहरें, मानो शीतकालीन समुद्र की छोटी-छोटी तरंगें हों।

ग्लोरिया के गाल और कान दोनों लाल हो उठे। वह देवीपाद की दृष्टि का मर्म समझ गयी थी।

"ग्लोरिया..."देवीपाद का स्वर भारी और मोटा हो गया।

"हूं !" कार को एक गली में मोड़ते हुए ग्लोरिया ने उत्तर दिया। उसके गंडस्थल की सिंदूरी आभा अभी तक मिटी नहीं थी। गली में कुछ दूर जाने के बाद उसने गाड़ी रोक दी।

"ब्रेक क्यों लगा दिये ?"

"चलिए, मोटर से उतरिये, चलिए।"

दोनों मकान के अंदर चले गये। ग्लोरिया ने पीछे मुड़कर ताला बंद कर लिया।

उन्नीस

सुकेशी कटक क्या चली गयी, शिवनाथ का मन किसी भी काम में नहीं लगता। उसने उसे कटक न जाने के लिए बहुत समझाया था, पर सुकेशी

ने उसकी एक न सुनी। हर बार यही कहती, "देखो शिव, मैंने कभी तुम्हारा मन नहीं दुखाया। मैं जानती हूं कि तुम मुझे प्राणों से भी अधिक चाहते हो; पर हमें भावना में बहकर ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे आगे चलकर पश्चात्ताप करना पड़े। कटक में गांव से अच्छी पढ़ाई होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सोचो, वहां कितनी बातें देखने को मिलेंगी और कितना क्या सीख सकूंगी! तुम मुझे मत रोको। जो जिसे चाहता है, वह उसकी मंगल कामना करता है, उसकी उच्चाकांक्षाओं के आगे दीवार नहीं बनता।"

और शिवनाथ निरुत्तर रह जाता था।

आखिर चलने वाले दिन सुकेशी ने कहा था, "पत्र देना।"

'दूंगा।" कहकर दुःख न सह सकने के कारण पढ़ाईवाला कमरा द्रुतगति से छोड़कर वह चला आया था।

सुकेशी के चले जाने के बाद उसे सारा गांव, बगीचा, मैदान, पहाड़ सब-कुछ सूना-सूना लगने लगा था। वह घंटों बाहर निरुद्देश्य घूमता रहता। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था।

मानसिक व्यथा के कारण कई दिन तक शिवनाथ ने सुकेशी को पत्र नहीं लिखा। अभिमान में भर कर सोचता, जब मेरी बात नहीं मानी और कटक चली गयी, तो दोष सुकेशी का ही है। पहले क्षमा मांगकर वह पत्र लिखे, तब मैं पत्र लिखूंगा। इस प्रकार कई दिन तक उसने पत्र नहीं लिखा और न उसके पास कोई पत्र आया। अंत में हार कर उसको पत्र लिखना पड़ा। पर उसके पत्र का कोई उत्तर नहीं आया। व्याकुल होकर उसने फिर पत्र लिखा—फिर और फिर। प्रति सप्ताह गर्ल्स स्कूल के पते पर शिवनाथ पत्र लिखता। लेकिन उसे अपने एक भी पत्र का उत्तर न मिला।

छः-सात पत्रों के बाद उसे आशंका होने लगी कि सुकेशी कहीं उसे खिलौना समझकर तो नहीं खेलती रही! समय के साथ यह धारणा दृढ़ होती गयी और उसके मन को मथने लगी। गांव और घर में ऐसा कोई न था जिससे कहकर अपना जी हलका कर पाता।

देवीपाद जाने कहां चला गया था। पुराने साथी पार्थ और राघव ईर्ष्या और द्वेष के कारण पास भी नहीं फटकते थे। जिस सुकेशी को अपना समझा था वह एकदम पराई हो गई। अपना दुखड़ा किससे कहे ? सारे घर में वह था और थी वसुंधरा ! वसुंधरा से वह क्या कहता ! और नौकर-नौकरानी, हलवाहे-मजदूर का होना-न होना वरावर था।

एक दिन मन की उद्विग्नावस्था में शिवनाथ ने देवीपाद की कितावों वाली अलमारी खोली और उसकी यादों में खो गया।—हमेशा कितावों में डूबा रहता था। किसी वात में उसकी आसक्ति नहीं थी। हां, दूसरों के दुःख में मदद अवश्य करता था और मदद करने का भी उसका अपना ढंग था। कैसी ही मुसीबत हो, उसकी आंखों में कभी आंसू नहीं आये। जो करना चाहिए, कर गुजरता था। पिता जवतक जीवित रहे, उसे स्नेह करते रहे और उसे सहसा स्नेह याद आ गयी। वह भी देवीपाद को बहुत चाहती थी। उस पर जान छिड़कती थी। पर उसने कभी स्नेह से पूछा नहीं। अव वही स्नेह पराये घर की वहू है, वालासोर के वहुत बड़े जमींदार के घर की वहू। जिस दिन उसकी शादी हुई उस दिन देवीपाद घर छोड़कर चला गया। कहां है, कुछ पता नहीं। संभव है, संन्यासी हो गया हो। क्या मेरी ही तरह प्रेम की चोट खाकर तो उसने घर नहीं छोड़ा ?

शिवनाथ ने अलमारी वंद कर दी। मेज पर पढ़ाई की कितावें रखी थीं। उन्हें देखकर पुनः सुकेशी याद हो आयी। सहसा खयाल आया कि कहीं सुकेशी की कोई रूममेट या सहेली उसके पत्र छिपा तो नहीं लेती ! और वह उसके पत्र की प्रतीक्षा कर रही हो ! हफ्तों और महीनों, प्रतीक्षा कर अभिमानिनी का हृदय टूट गया हो! मेरी ही तरह सोचती हो कि शिवनाथ से प्रेम किया और झूठे न पत्र तक नहीं लिखा। अभिमान में उसने भी जिद पकड़ ली हो कि शिवनाथ का पत्र आये विना पत्र नहीं दूंगी।

वह इतना उद्विग्न हो गया कि आगे सोच न सका। सामने दीवार पर घडी देखी, साढ़े दस बजे थे। रात बारह बजे कटक की ओर गाड़ी जाती थी। पागल की तरह हैंडबैग में जरूरी समान भरा और मां को पुकारा :

"मां, वाहर का दरवाजा वंद कर लेना, मैं कटक जा रहा हूं।"

"कटक ! क्यों ?" वसुंधरा ने आश्चर्य में भरकर पूछा, "क्या रमाकांत का पत्र आया है ?"

"नहीं, वैसी कोई वात नहीं है। मेरा एक जरूरी काम है। लौटकर वताऊंगा।"

और वसुंधरा कुछ कहती, उसके पहले ही लंवे डग भरता हुआ वैग हाथ में लिये वह आगे बढ़ गया। वाणपुर से रिक्शा मिलेगा। स्टेशन तीन मील दूर था।

७

शिवनाथ रमाकांत के मकान पर पहुंचा तो सवेरे के आठ वज रहे थे। वह अभी विस्तरे से उठा नहीं था। दुमंजिले पर तीन कमरे थे, जहां रमाकांत और उसका रसोइया रहते थे। नीचे दवाखाना, स्टोर आदि थे। सवेरे-सवेरे शिवनाथ की आवाज कान में पड़ी तो सहज विश्वास नहीं हुआ। आश्चर्य में भर कर पूछा "कौन, शिव ! क्या वात है ? कैसे आये ? न चिट्ठी, न पत्री ! आओ, ऊपर चले आओ।"

"स्कूल की छुट्टी थी, घूमने चला आया।" शिवनाथ ने वताया।

"छुट्टी, काहे की ?"

"प्रधानाध्यापक की वदली हो रही है। विदाई की सभा होगी। अतः छुट्टी है।"

नित्यकर्म के वाद नाश्ते की मेज पर रमाकांत ने पूछा, "घूमने का इरादा है ?"

"हां, आपकी साइकिल···।"

"देखो, सावधानी से जाना। कटक की भीड़ है, सदा वाईं ओर चलाना और जल्दी ही लौट आना।"

शिवनाथ रमाकांत की साइकिल लेकर निकल पड़ा। पूछता-पूछता गर्ल्स होस्टल पहुंच गया। गेट से दरवान के हाथ खबर भेजी—ग्यारहवीं

की छात्रा, सुकेशी महापात्र, रूम नंबर तेरह। बंधु शिवनाथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। पास के गेस्ट रूम में शिवनाथ को बैठाकर दरवान होस्टल के अंदर चला गया। प्रतीक्षा में शिवनाथ की सांस तेज हो गयी, चेहरा लाल पड़ गया, हृदय की धड़कन बढ़ गयी, किसी तरह अपने को संभाले रहा। चेहरे को रूमाल से बार-बार रगड़ने लगा।

पांच मिनट बाद दरबान लौट आया। बोला, "बाबू, होस्टल में उनके कमरे में ताला पड़ा है। शायद किसी सहेली के कमरे में गयी हैं या क्लास में गयी होंगी।" दरबान ने चिट शिवनाथ को लौटा दी और कहा, "आप चार बजे तक आइए, भेंट होगी। स्कूल की छुट्टी हो जायेगी और सब होस्टल में रहेंगी।"

शिवनाथ कहीं न जाकर घर लौट आया। दवाखाने में रमाकांत अखबार पढ़ रहा था। रोगी बेंच पर बैठे थे। कुछ स्थानाभाव के कारण नीचे भी बैठे थे। रोगियों की उपेक्षा कर वह अखबार पढ़ता रहा। शिवनाथ लौटा तो पूछा, "क्यों, किधर गये थे ?"

"बक्सी बाजार तक गया था।"

"मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था। मुझे एक जरूरी काम से जाना है। बिहारी से कहकर खाना खा लेना और आराम करना। मैं लौटकर खा लूंगा।"

रमाकांत साइकिललेकर चला गया। सुकेशी ने आने को कहा था। यदि शिवनाथ साइकिल न ले जाता तो वह बहुत पहले ही चला गया होता। रिक्शे से भी जा सकता था, पर रोगी आ गये। गर्ल्स स्कूल पहुंचने का समय बीत चुका था, पर आज्ञाकारिणी छात्रा की तरह, स्कूल के सामने वाले होटल में बैठकर सुकेशी उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। गर्ल्स स्कूल की लड़कियों के साथ घंटों गप्पें मारने के लिए होटल ही सुरक्षित स्थान था। रमाकांत पहुंचा, तब सुकेशी एक सहपाठिनी के साथ बातें कर रही थी। पहले उसने बाधा डालना उचित नहीं समझा; पर जब देखा कि साथ वाली लड़की उठने का नाम नहीं ले रही तो वह सुकेशी के पास

पहुंच गया। उसे देख वह लड़की चलती बनी।

"मुझे आप पर बेहद गुस्सा आ रहा है।"

"इसीलिए तो मान-भंजन के लिए मैं उपस्थित हुआ हूं।"

" 'फागुन' फिल्म लगी है, जानते हैं ?"

"जानता हूं। चल रही हो ?"

"अभी तो टिकट लेकर लौटी हूं। उस सहेली के घर थोड़ा समय लग गया। आप ठीक चार बजे आ जाइए। हम लोग पहले पुष्प-प्रदर्शनी देखने चलेंगे और बाद में सिनेमा।"

"प्र दर्शनी देखने की मेरी इच्छा बिलकुल नहीं है।"

"तो क्या मैं अकेली उस भीड़ में घुसूंगी ? आपको चलना होगा।"

"हुजूर का जो हुक्म !"

" मैं चलती हूं। क्लास है। आपके कारण कितनी देर हो गयी !"

"मेरे कारण ? नहीं, सिनेमा के कारण !"

"एक ही बात है।" सुकेशी हँसकर चली गयी।

रमाकांत लौटा तो शिवनाथ खा-पीकर बिस्तरे पर सो रहा था। वह भी खाकर विश्राम करने चला गया।

शिवनाथ की नींद खुली तो पांच बजकर पंद्रह मिनट हो रहा था। घर में सिर्फ रसोइया था। वह तुरंत कपड़े पहनकर गर्ल्स होस्टल की ओर चल दिया।

सुबह वाला दरबान फाटक पर खड़ा था। उसे देखते ही हँसकर कहने लगा, "आ गये बाबू, कागज पर जरा लिख दीजिए, मैं अन्दर दे आऊंगा।"

शिवनाथ ने सुबह वाला कागज फेंका न था। जेब से निकालकर पकड़ा दिया। इसी बीच होटल के अंदर से दो-तीन छात्राएं बाहर आयीं। दरबान ने वह कागज दिखाकर पूछा तो उन्होंने बताया कि सुकेशी आधा घंटा हुए घूमने चली गयी; और वे शिवनाथ की तरफ देखने लगीं।

शिवनाथ उलटे पांव लौट गया और महानदी के रास्ते चलने लगा। सोचता जा रहा था, यहां सुकेशी आराम से है। सुखी न होती, मन उत्फुल्ल न होता तो घूमने जाती? और मैं सोच रहा था कि वह दुःखी होगी, मेरी याद में हैरान होगी!

रिक्सा जा रहा था। शिवनाथ ने हाथ हिलाकर उसे रोका।

"बाबू, प्रदर्शनी?" रिक्शेवाले ने पूछा।

"हां-हां, चलो।"

प्रदर्शनी में खूब भीड़ थी। शायद वह आखिरी दिन था। अंदर घुसते समय सुकेशी को मन से भुलाकर वह प्रदर्शनी देखने में लग गया। सुकेशी से भेंट होने की आज और संभावना भी न थी। यदि मिल जाती तो बातें कर घर लौट जाता। मां चिन्ता कर रही होंगी। कटक आने का कारण भी तो उन्हें बताकर नहीं आया था।

प्रदर्शनी देखकर थका-मांदा करीब नौ बजे, पैदल ही घर लौटा तो दवाखाना बंद पड़ा था, पर अंदर बैठकखाने में रोशनी जल रही थी। पर्दे के कारण, कौन बैठा था, बाहर से दिखाई नहीं पड़ रहा था और पास आने पर शिवनाथ को सुनाई दिया, "और कबतक हाथ नहीं आओगी?"

"ठहरो, इतने अधीर क्यों होते हैं! विवाह तो हो जाने दो।"

"मैं तो कहता हूं, आज ही विवाह हो जाये। मैं तैयार हूं।"

"नहीं-नहीं, पिताजी को दुःख होगा। मैं एम० ए० पास कर लूं तब शादी होगी। फिर डाक्टरेट के लिए लन्दन जाऊंगी। साथ चलोगे न? तुम्हें छोड़कर उन गोरों के देश मैं अकेली नहीं जाऊंगी।"

"मतलब यह कि छह वर्ष प्रतीक्षा करनी होगी? सुकेशी, तुम शादी करके भी तो पढ़ सकती हो! मेरे उदार विचारों को तो तुम जानती ही हो। पिताजी के लिए बेकार हम दोनों के प्रेम का बलिदान क्यों कर रही हो? उस पत्रिका को बंदकर जरा मेरी ओर देखो।" सुकेशी चुप थी, शायद कोई पत्रिका देख रही थी। रमाकांत ने आगे कहा, "तुम हाड़-मांस की नहीं, पत्थर की बनी हो, सुकेशी।"

"रजनी देवी से विवाह क्यों नहीं कर लेते ? वे तुम पर पागल हो रही हैं ! इसके अलावा वे तुम्हारे लिए अच्छा मैच भी हैं।" सुकेशी का उत्तर सुनाई दिया।

"सुकेशी ! मैं इतनी गंभीरता से बात कर रहा हूं और तुमको मजाक सूझ रहा है ! ठीक है, मैं रजनी से ही विवाह करूंगा। अंत में मुझे उसीसे विवाह करना होगा और रजनी ही क्यों, अगर तुम अफ्रीकी नीग्रो स्त्री ही ले आओ तो उससे भी विवाह करने को राजी हूं, क्योंकि मैं शायद उसी के योग्य हूं, मुझमें कोई रूप या गुण नहीं है।" रमाकांत सिसकने-सा लगा था।

"रमाकांतबाबू ! प्लीज !"

रमाकांत ने शायद जेब से रूमाल निकालकर आंसू पोंछ डाले। सुकेशी ने आगे कहा, "क्या आपसे हंसी-मजाक करने का भी मेरा अधिकार नहीं है ? इतना ही चाहते हैं हम एक-दूसरे को ?" वह बनावटी गुस्से से खड़ी हो गयी।

रमाकांत ने कहा, "अधिकार है, सुकेशी। फिर भी ऐसा मजाक करना क्या उचित है ? तुम्हारे सिवा मैं किसी स्त्री को प्यार नहीं करता, न किया और न करूंगा। मेरे लिए तुम्हीं एकमात्र…"

"और मैंने क्या… सुकेशी जोरों से हंस दी।"

तभी शिवनाथ को वहां से किसी के जल्दी-जल्दी चलकर जाने की आहट सुनाई दी। उसने खिड़की की राह देखा तो सचमुच कोई द्रुतगति से चला जा रहा था। वह दरवाजे के पास अंधेरे में खड़ा था। यह जानने का कोई उपाय नहीं था कि जाने वाला कौन है ! न उसने सोचा था कि रमाकांत और सुकेशी का प्रेमालाप कोई सुन रहा होगा, और न बाहर जाकर देखने की उसकी इच्छा ही हुई कि जाने वाला कौन है। वह तो नाटक के अंतिम दृश्य को देखने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ वहां खड़ा था। फिर उसका उधर ध्यान गया तो सुकेशी कह रही थी, "तुम जो चाहते हो, उसमें से कुछ तो मिला। इतने पर ही सब्र करो। अब मैं चलती हूं।"

"ठीक है, सब्र तो करना ही होगा, क्योंकि और उपाय भी क्या है ?"

सुकेशी के बाहर जाने से पहले ही विश्वनाथ सड़क पर निकल आया और बिजली के चार-पांच खम्बे पार, पता नहीं क्या सोचकर, एक जगह अंधेरा-सा देखकर रुक गया। चार-पांच मिनट बाद सुकेशी रिक्शा में उधर आती दिखाई दी। जैसे ही उसका रिक्शा पास आया, वह रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। सुकेशी देखकर चौंकी, जोर से बोल उठी, "तुम !"

शिवनाथ का चेहरा विचार-शून्य था, मानो वह दिग्भ्रांत हो रहा हो, मानो किसी अज्ञात शक्ति ने उसे धक्का देकर रिक्शे के सामने खड़ा कर दिया हो।

सुकेशी ने जरा हिम्मत कर पुनः कहा, "शिवनाथ बाबू, आप कब आये ?"

"तुम्हें मेरी पांचों चिट्ठियां मिलीं ?" शिवनाथ ने मंद, दुर्बल स्वर में कहा। लग रहा था जैसे आदमी मृत्यु से पूर्व अपनी अन्तिम अभिलाषा प्रकट कर रहा हो।

लेकिन सुकेशी ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। बात बदल कर पूछा, "गांव की तरफ से अभी तो कोई गाड़ी आती नहीं ?"

"तुम्हें मेरे पत्र मिले थे ?"

"आप रिक्शे पर आ जाइए। शायद भाई का घर आपने देखा नहीं है।"

"तुम्हें मेरे पत्र मिले थे ?" शिवनाथ का स्वर क्रमशः मंद और दुर्बल होता जा रहा था।

अंततः सुकेशी के लिए बात टालना मुश्किल हो गया। वह उस दुर्बल और मंद स्वर की उपेक्षा नहीं कर सकी।

"हां, मिले थे। उत्तर लिखने का सोचती रही, पर समय ही न मिला, देर हो गयी।" किसी तरह उसने अपना बचाव किया।

शिवनाथ ने रिक्शे के सामने से हटकर रास्ता छोड़ दिया और रिक्शे-वाले से कहा, "जा रे रिक्शे वाले, जा।" फिर उसके दोनों हाथ उठे और

जुड़ गये, "अच्छा सुकेशीदेवीजी, नमस्कार।" वह वहां से आगे बढ़ गया।

तिलंगा रिक्शेवाला अचानक रास्ता रुकने के कारण विवश होकर ठहर गया था। उसे मन-ही-मन गुस्सा आने लगा था। शिवनाथ की बात सुनकर उसका तनाव कम हो गया और वह रिक्शे को दौड़ाता हुआ चल पड़ा।

बीस

शिवनाथ की गाड़ी गांव के स्टेशन पर पहुंची तो दिन एक पहर चढ़ आया था। गाड़ी ने अभी आधा प्लेटफार्म ही पार किया था कि नीचे खड़े यात्रियों ने गाड़ी की ओर देखकर चिल्लाना शुरू कर दिया "हें! हें! अरे!" शिवनाथ खिड़की के पास बैठा बाहर देख रहा था। उसने नीचे खड़े यात्रियों की चीख-पुकार सुनी, पर कारण उसकी समझ में कुछ नहीं आया। गाड़ी रुकते ही वह नीचे कूदा और फुर्ती से भीड़ की ओर चला गया।

"क्यों भई, क्या हो गया?"

"सांतरापुर गांववाला पागल छोकरा कट मरा!"

"कब? कैसे?"

"अभी, इसी गाड़ी के नीचे।"

एक आदमी विस्तार से बता रहा था, कुछ दिन से पगला रोज शाम को प्लेटफार्म पर आकर गाड़ियों का आना-जाना देखा करता था। वह न तो किसी से कुछ मांगता था और न कुछ कहता था। यदि कोई अपनी इच्छा से खाने को कुछ दे देता तो खा लेता या दूसरे बच्चों में बांट देता था। एक घड़ी रात बीते वह गांव लौट जाया करता था, पर कल जाने क्यों नहीं लौटा! स्टेशन के वेटिंग रूम में ही पड़ा रहा। सवेरे जनता-एक्सप्रेस की लाइन क्लीयर हो गयी तो वह प्लेटफार्म की बेंच पर बैठा पटरियों को देख रहा था। किसी ने पूछा, क्यों जी, "क्या बात है? इस तरह क्यों बैठे हो?

कल रात गांव नहीं गये ? उसने जवाब दिया, 'नहीं, मेरा मन खराब है। तुम्हारे पास कुछ पैसे हैं ?" अपरिचित उसे दस पैसे का सिक्का देकर चला गया। बाहर बनिये की दुकान से दस पैसे के चावल लाकर उसने चूजों के सामने डाल दिये, जो प्लेटफार्म पर दाने की तलाश में घूम रहे थे। चावल देखते ही चूजे दौड़ पड़े और क-क-डो-कें-को करते हुए चुगने लगे। पगला बैठा रहा। कभी चूजे आपस में झगड़ने लगते तो कहता, "ओ भाई, झगड़ो नहीं, बांट-बूंटकर खाओ। ‑झगड़ना ठीक नहीं।' यदि कोई चूजा उड़कर पटरी की तरफ भागता तो पगला दौड़कर उसे घेर लाता और कहता, "मरना चाहते हो ! घंटी बज गयी, जानते नहीं, अभी गाड़ी आने ही वाली है ! लोग खड़े मजा ले रहे थे। इतने में गाड़ी दूर से आती दिखाई दी। अचानक एक चूजा तीर की तरह पटरी की ओर भागा। पागल, "अरे, अरे! कहां भाग रहे हो ? मर जाओगे।" कहता हुआ उसे बचाने के लिए लाइन पर कूद पड़ा। तभी दैत्याकार कैनेडियन इंजन भक-भक करता आ गया और पगले का सिर, मुंह सब बोटी-बोटी बिखर गया। धड़ पटरी से छिटक कर दूर जा गिरा और बिना मुंड का रुंड तड़फने लगा। पगले की मुट्ठी में चूजा फड़फड़ा रहा था, जिसे उसने अपनी जान देकर बचाया था।

लोग आह-आह करते सुन रहे थे और शिवनाथ किशोर के विचारों में खोता जा रहा था :

···पगला किशोर। कितना सुंदर था ! उम्र बीस-इक्कीस रही होगी। इतनी मजे की बातें करता कि गांव वाले इसे अपने घर ले जाते और सुनते रहते। वह लोगों के छोटे-मोटे काम भी कर देता था। कई बार जो करने को कहते, उसका ठीक उल्टा करता था। बायें हाथ से बढ़िया निशाना लगाता था। उस ने कभी किसी का कोई नुकसान नहीं किया। हां, अगर कोई पागल कह देता तो चिढ़ जाता और पत्थर फेंकने लगता। सुकेशी का मन जीतने के लिए नदी की रेती में वह अनुष्ठान करने बैठा था तो उसकी खोज में निकले हुए पाणव को पगले किशोर ने ही उसका पता बता दिया था। इससे चिढ़कर एक दिन शिवनाथ ने उसे तालाब में धकेल दिया था तो

अभिमान से भरा वह तीसरे पहर तक पानी में खड़ा रहा था और सारसी वड़ा अनुनय-विनय के वाद ही उसे पानी से वाहर निकाल पायी थी...यह सव याद करके शिवनाथ का मन जाने कैसा हो गया। उसे लगा एक चूजे के लिए अपने प्राण देने वाले किशोर की मृत्यु ट्रेन के इंजन से नहीं हुई, उसकी प्रतिहिंसा राक्षसी ने ही वेचारे पगले के प्राण ले लिये।

बड़ी मुश्किल से अपने उमड़ते हुए आंसुओं को रोकने का प्रयत्न करते हुए शिवनाथ प्लेटफार्ट से वाहर निकला तो देखा कि महेश्वर पाढ़ी के साथ स्नेहप्रभा वैलगाड़ी पर चढ़ रही है। उसने पास जाकर कहा, मौसा, नमस्कार! क्या स्नेह वहन को लिवाने गये थे ?"

"हां, इसी गाड़ी से तो लौटे हैं।"

"मौसा, दीदी तो खा-पीकर वहुत मोटी हो गयी है।"

"मोटी कहां हुई रे ?दो-तीन महीने में भी कोई मोटा हो जाता है ?" स्नेह ने कहा।

"वो कौन है दीदी, जो पीछे छिप रही है ?"

"मेरी छोटी ननद है, हेना।"

"हेना यानी रजनीगंधा! इसीलिए इतनी लज्जा रही है! अभी तुम्हारे पीछे मुंह छिपा रही है, शाम के वाद सुगंध देगी, क्यों हेना ? अच्छा, मौसा, गांव में मिलेंगे, मैं चलता हूं।"

"तुम पैदल क्यों जाओगे ? बैलगाड़ी खाली गांव जायेगी और तुम पैदल! यह कैसा न्याय है ?"

"हां, बाबू, बैलगाड़ी पर चलो।" गाड़ीवान ने भी आग्रह किया।

शिवनाथ को बैलगाड़ी पर चढ़ना पड़ा। वैल जुत गये थे। उसके सवार होते ही चल पड़े।

"तुम किधर गये थे ? कब से गांव में नहीं थे ?" स्नेह ने पूछा।

प्रश्न सुनकर शिवनाथ थोड़ा गंभीर हो गया। "कटक गया था, भाई ने बुलाया था।"

"तुम्हारे भाई मजे में तो हैं ?"

"हां खूब आनन्द में हैं।" शिवनाथ हँसा, पर अंदर कहीं कुछ चटक गया, एक कसक-सी उठी। स्नेह भी उसकीवात सुनकर हँस दी। हेना ने दोनों को हँसते देखा तो स्वयं भी हँसने लगी।

"दीदी, तुम्हारी ननद तो बड़ी हँसमुख लगती है।"

"देवीभाई की कुछ खबर मिली ?" आखिर स्नेह ने पूछ ही लिया।

"नहीं जाने कहां चले गये ! एक चिट्ठी तक नहीं डाली।"

"जहां भी रहें, सुख से रहें, उनकी उन्नति होती रहे।"

"उन्नति-अवनति संसार की होती है, दीदी। संन्यासी की उन्नति का क्या मतलब ?"

"संन्यासी ?नहीं-नहीं, वे सिर्फ गृह-त्यागी हैं। उन्हें संन्यासी क्यों कहते हो ?"

शिवनाथ ने स्नेह की बात का जवाब नहीं दिया। स्नेह सहसा उदास हो गई और पीड़ित स्वर में बोली, "सच, यदि वे संन्यासी हो गये हैं तो कितना कष्ट पाते होंगे ! खाने-पीने के लिए उन्हें कितनी तकलीफ उठानी पड़ रही होगी !

"सुख पाने के लिए कोई घर छोड़ता है ?"

अचानक स्नेह ने आंखें बन्द कर अलक्ष में किसी के प्रति हाथ जोड़ दिये

तभी हेना ने पूछा, "भाभी, गांव और कितनी दूर है ?"

"यही सामने तो दीख रहा है। तुम्हें हमारा गांव पसंद आयेगा भला ? एक साथी तुम्हें जरूर मिल गया। शिव, हेना दसवीं में पढ़ती है।"

शिवनाथ गांव के बाहर उतर गया। स्नेह से बोला, "तुम दो-तीन महीने तो रुकोगी ही। मैं सुविधा से आऊंगा। तुम तो अब बहू हो गयी हो, बिना बुलाये हमारे घर आओगी नहीं।"

स्नेह ने फीकी हँसी हँसकर कहा, "आऊंगी क्यों नहीं रे ! मगर तू भी अपनी दीदी की खोज-खबर लेता रहना।"

शिवनाथ ने पगले किशोर की दर्दनाकमौत केबारे में उसे नहीं बताया।

वह जानता था कि स्नेह पगले किशोर को स्नेह करती थी। अनेक बार लोगों द्वारा सताये जाने पर उसने उसकी सेवा-सुश्रूषा की थी। गांव में इतने दिन बाद आयी है, सुनकर उसे दुःख होगा।

बैलगाड़ी से उतरकर वह पीतांबर के घर की ओर चला गया। सारसी आंगन बुहारने में लगी थी और पीतांबर कहती जा रही थी, "तुम उसके लिए कलकत्ते से इतनी चीजें लाये और पागल आया ही नहीं। रोज तो संध्या तक आ जाता है। कल किधर निकल गया कि आज अभी सुबह तक नहीं लौटा। कहीं सो गया होगा किसी खूंटे के सहारे या पेड़ के नीचे। ऐसे बेटे से तो निपूती ही भली। पगले ने मेरा सब-कुछ डुबो दिया। एक दिन इसी की चिंता में मर जाऊंगी, देख लेना। मर जाये तो आदमी एक किनारे तो लगे। यह न घर का रहा न घाट का।"

इसी समय शिवनाथ ने बाहर का दरवाजा खिसकाया।

सारसी आवाज सुनते ही बरस पड़ी, "आ गया, पगलौटा, नालायक, नासपीटा...।"

पीतांबर ने करुण स्वर में कहा, "उसे पगला मत कहो, वह दुखी हो जायेगा।"

"वाह, पगले को पगला भी मत कहो!"

"वह लौट जायेगा। तुझे गोपीनाथ की सौगंध, उसे पगला मत कह। क्यों गुस्सा हो रही है!" फिर पीतांबर ने मधुर स्वर में पुकारा, "किशोर!" और बाहर आ गये।

"मौसा..." शिवनाथ का गला रुंध गया।

"शिवनाथ, तुम? सवेरे-सवेरे? आओ-आओ! देवी की खबर मिली?"

"नहीं, मौसा। मैं किशोर के बारे में बताने आया था।"

शिवनाथ को कुछ कहना न पड़ा। उसके रुआंसे चेहरे और विषाद-विजड़ित आंखों ने पीतांबर को सब-कुछ बता दिया। उनकी बाईं आंख फड़क उठी और चेहरा काला पड़ गया। दोनों हाथों में अपना चेहरा छिपा-

कर वे नीचे बैठ गये। तबतक एक हाथ में झाड़ू लिये सारसी दरवाजे पर आ गयी थी। उसके मातृ-हृदय को स्थिति समझते देर न लगी। एक अमानुषी चीख के साथ "हाय मेरे किशोर!" उसके मुंह से निकला और वह पेड़ की तरह गिर पड़ी।

शिवनाथ वहां से घर की ओर चला तो उसके पांव नहीं उठ रहे थे। दो मिनट का रास्ता लंबा, कटीला, कभी समाप्त न होने वाला कंकरीला, दुरूह पथ बन गया था। कभी मृत पिता का ख्याल आता, कभी घर-द्वार छोड़कर भागे हुए देवीपाद का, सहसा सुकेशी आंखों के आगे आ जाती और उसका विश्वासघात हृदय को क्षत-विक्षत कर देता। रह-रहकर तालाब के पानी में गले तक डूबे किशोर का रूठा अभिमान-भरा चेहरा सामने आता और वह अपराध भावना से दग्ध होने लगता। सारसी के अनुनय-विनय करने पर जब वह तीसरे पहर तालाब से निकला तो किस बुरी तरह कांप रहा था!

...ओह यह, मरणधर्मा मनुष्य अपने अहंकार में किस-किसको कितनी चोटें पहुंचाता है, कोई हिसाब नहीं। देवी भैया स्नेह का दिल तोड़कर चले गये। सुकेशी ने मेरे दिल को खिलौना समझा, मन बहलाती रही और फेंक-फांककर नये खिलौनों की तलाश में कटक चली गयी! आदमी भूल जाता है कि एक दिन उसे मरना होगा। सारसी हर समय किशोर को कोसती रही और अब बिलख रही है। क्यों हम किसी को सताते हैं? क्यों अपशब्द कहते हैं? क्यों किसी पर नाराज होते हैं?

मां वसुंधरा उसे दरवाजे पर ही मिल गयी। सारसी के करुण रुदन की ध्वनि उसे बाहर खींच लायी थी।

...हाय, मैंने अपनी ही मां को कितना कष्ट दिया, कितना सताया! कभी इससे सीधे मुंह बात न की...

"मां! मां!" शिवनाथ चिल्लाता हुआ वसुंधरा की ओर दौड़ा, जिस तरह बछड़ा गाय की तरफ लपकता है। उसकी आंखों से चौधार आंसू बह रहे थे।

"मां, मुझे माफ कर दो ! मैंने तुम्हें बहुत सताया। अब मैं तुम्हें कभी कष्ट न दूंगा। मुझे माफ कर दो, मां !" शिवनाथ ने वसुंधरा से लिपटते हुए कहा और अपना सिर उसकी छाती में छिपा लिया।

वसुंधरा हक्का-बक्का रह गयी। सारसी के करुण रुदन को सुनकर गहरी आशंका से उद्विग्न, वह दरवाजे पर चली आयी थी। शिवनाथ के इतने जल्दी लौट आने की उसे आशा नहीं थी। व्यथित बेटे को छाती से लगाकर उसके माथे पर हाथ फेरते हुए रुंधे गले से वह सिर्फ इतना ही कह पायी, "बेटे, मेरे बेटे..."

और गांव की पूरी गली में कुररी के मिलाप-जैसा सारसी का हृदय विदारक करुण क्रंदन गूंज रहा था—किशोर ! हाय, मेरे किशोर...

इक्कीस

उस दिन रजनी ने अंधेरे में खड़े होकर सुकेशी और रमाकांत की बातें सुनी। रमाकांत उसे नहीं चाहता, यह सुनते ही उसके पैरों तले से जमीन खिसक गयी। पहले तो सुनकर भी विश्वास न हुआ कि रमाकांत इतने दिन छल करता रहा। लेकिन जब सुकेशी और रमाकांत की बातचीत हुई तो विश्वास हो गया। ओह, रमाकांत इतने दिनों से उसे धोखा ही दे रहा था !

एक रमाकांत को छोड़ किसी युवक ने रजनी से प्यार का अभिनय तक नहीं किया था ? न किसी ने उससे सहानुभूति ही दिखाई थी। सब उसकी असुंदरता पर हँसते थे, उसकी स्थूल काया का मजाक उड़ाते थे। रमाकांत के व्यवहार, उसकी सहानुभूति और स्नेह को रजनी ने सच समझा था। वह अपने भाग्य को सराहती कि कोई उसे प्रेम करने वाला तो मिला। वह धनी पिता की लाड़ली बेटी थी। मुंह से बात निकलते ही उसकी इच्छा पूरी

हो जाती थी। बहुत दिन हो जाने पर भी जब रमाकांत ने प्रेम निवेदन नहीं किया तो उसने स्वयं ही विवाह का प्रस्ताव उसके सामने रखा था। रमाकांत के साथ वह कितनी घूमी थी, खेली थी, होटलों में गयी थी और कितनी शाम उसके साथ नदी-किनारे बिताई थीं! उस सबका यह अंत? रजनी का हृदय पुरुष के इतने बड़े छलावे को देख हाहाकार कर उठा!

रमाकांत यदि उसे चाहता नहीं था, तो औरों की तरह उससे दूर रह सकता था; स्पष्ट कह सकता था, 'रजनी, मैं तुम्हें नहीं चाहता, तुम क्यों भ्रम में अपना समय नष्ट करती हो?' यदि खुलकर कहने का साहस न था तो किसी और उपाय से कह सकता था। प्रेम का अभिनय क्यों किया?

किसी सहेली ने कहा था, 'रजनी रमाकांत धन का कीड़ा है। तेरा धन उसे खींच रहा है। वह तेरे पैसे को प्यार करता है।' तब रजनी को इस बात का विश्वास नहीं हुआ था। उसने सहेली को फटकार दिया था।

क्या पैसा सचमुच आदमी को इतना घृणित, इतना स्वार्थी बना देता है? उसने तो कभी धन को इतना महत्त्व नहीं दिया? रमाकांत ने उससे जब जितना पैसा मांगा, अकुंठित होकर देती रही, कभी हिसाब नहीं देखा और क्या रमाकांत इसीलिए हिंदू-पद्धति से विवाह करने से इनकार कर रहा था? सिविल मैरिज में संस्कारों का कोई बंधन जो नहीं होता। हिंदू विवाह की अपेक्षा उसमें कहीं आसानी से तलाक हो जाता है। दिखावटी विवाह कर दो-चार साल में पूरा पैसा खाकर रमाकांत उसे छोड़ देता। यही विचार उसके मन में होना चाहिए। ओह! रजनी का सिर चकराने लगा।

रजनी घर लौट आयी और अपने सोने के कमरे की बिजली जला कर उसने दरवाजा बंद कर लिया। क्या वह सचमुच कुरूप है, कुत्सित और बेडौल है—देखना ही पड़ेगा। दीवार पर टंगे दर्पण के सामने वह खड़ी हो गयी। उसने देखा, चेहरा रक्त-श्यामवर्ण, घुंघराले केश, चिकनाहट भी है। संकरा ललाट, भौंहें सीधी, आंखें बड़ी अवश्य हैं, पर लंबी नहीं। गाल खूब

माँसल शायद इसीलिए आंखें लंबोतरी नहीं दीखतीं। नाक उतनी ऊंची तो नहीं, पर चौड़ी जरूर है। गर्दन मोटी और छोटी, कंधे पर हड्डी कहीं दिखाई नहीं पड़ती। वक्षस्थल कोमल, खूब उभरा हुआ और कमर का घेरा कहीं ज्यादा फैला हुआ। हां, वह स्थूलकाय और असुंदर है!

वह बिस्तर पर औंधे मुंह गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी—मां, मैं कुरूप क्यों हुई? मुझ बदसूरत को तूने जन्म क्यों दिया? जन्मते ही गला घोंट दिया होता तो आज इतना दुःख तो न भोगना पड़ता! रजनी की इच्छा हो रही थी कि किसी तरह अपने कुरूप, घिनौने शरीर को फेंक-फांककर मुक्त हो जाय। लेकिन क्या यह उसके वश का था?

कुछ देर बाद जब रोना बंद हो गया तो सोचने लगी, क्या शरीर की सुंदरता ही सबकुछ है? अगर स्त्री सुंदरी होकर भी पति को न चाहे तो उस सुंदर शरीर की क्या सार्थकता है? क्या सुंदरी स्त्रियां हमेशा सती-साध्वी होती हैं? क्या वे पति को सुख और शांति देती हैं? अधिकांश तो इसका उलटा ही देखा जाता है। मेरे अंदर क्या हृदय नहीं है? शरीर जरूर सुंदर नहीं, पर मन, हृदय और मेरा व्यवहार आदि तो असुंदर नहीं। फिर अपनी इस असुंदरता के लिए क्या मैं उत्तरदायी हूं? भगवान ने क्यों मुझे प्रेम करने की शक्ति देकर भी असुंदर बनाया? मुझे अंधा क्यों नहीं कर दिया? किसी को न देखती तो संतुष्ट रहती; बहरी कर देता तो किसी की छल-कपटभरी वाणी तो न सुनती, सुखी रहती। हृदय में आशा भर दी, पर उसे पूरा करने की सामर्थ्य नहीं दी। हे भगवान्! यह कैसा न्याय है, कैसा विधान है?

इस प्रकार रोते, सिसकते और सोचते हुए करीब आधा घंटा हो गया। अंत में मन-ही-मन कोई दृढ़ निश्चय कर वह बिस्तरे से उठ खड़ी हुई।

अपने सारे गहने उतार कर उसने वैनिटी बैग में भर लिये। गुजराती सर्राफ लाभजी की दुकान साढ़े दस बजे खुलती थी। वह ग्यारह बजे जायेगी। वहीं से सारा गहना खरीदा था। बेचे भी तो पांच हजार से कम क्या मिलेगा?

दूसरे दिन रजनी पहले चौधरी बाजार गयी और उसके बाद रमाकांत के यहां।

दुकान में खूब भीड़ थी। रमाकांत कीमती सूट पहने रोगियों को दवा लिखकर दे रहा था। उसका ध्यान बार-बार हाथ में बंधी घड़ी की ओर चला जाता, मानो किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। रजनी भी जाकर रोगियों वाली बेंच पर बैठ गयी। रमाकांत ने देखा और आश्चर्य में भरकर कहा, "अरे, तुम यहां बैठी हो! अंदर चलो!"

पर रजनी वहीं बैठी रही। रमाकांत और भी चकित हुआ। बोला, "मैं रोगी देखकर आ रहा हूं। तुम भीतर चलकर बैठो। तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है?"

रजनी के जी में आया, कह दे, 'धोखेबाज!' पर वह बिना कुछ कहे उठकर अंदर चली गयी। बैठक में दवाओं के दो-तीन पार्सल खुले थे। बिल से मिलान नहीं हुआ था, अतः दवाएं अलमारी में नहीं रखी गयी थीं। रजनी ने शीशियों की ओर देखा। एक शीशी ने उसका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। कुछ सोचकर उस शीशी को उठाकर उसने ब्लाउज के अंदर रख लिया। अंदर रखते समय क्षण भर के लिए, उसके चेहरे का रंग उड़ गया था।

दस-पंद्रह मिनट बाद रमाकांत आया और बोला, "क्या तबीयत खराब है? बहुत उदास लग रही हो। शरीर पर एक भी गहना नहीं! बाहर बेंच पर ही बैठ गयी थीं। मैं तो डर गया। क्या बात है?"

"क्यों बगैर गहनों के सुंदर नहीं लगती क्या?"

रमाकांत के जी में आया,कह दे, तुम्हारे जैसी बदसूरत भी कभी सुंदर लग सकता है! लेकिन कहा नहीं। कोई उपयुक्त जवाब सोच ही रहा था कि रजनी ने बात काटकर कहा, "जोर की भूख लगी है, पहले कुछ खिलाओ पिलाओ।"

"हां, जरूर !" नौकर से नाश्ता लाने के लिए कहकर रमाकांत सोफे पर रजनी से सटकर बैठ गया और बोला, "रजनी, सच बताओ, क्या बात है ? तुम कुछ बदली-बदली-सी लग रही हो।"

"रमाकांतबाबू, एक बात पूछूं, बताओगे ? संसार में आदमी जो चाहता है, वही क्या उसे मिलता है ?"

रमाकांत रजनी की ओर देखने लगा।

वह हँसकर बोली, "क्या देख रहे हो—चौड़ी-मोटी नाक, चर्बी से फूले गाल ? क्या इन्हें चूमने की इच्छा हो आयी है ?"

सुनकर रमाकांत चौंक पड़ा, थोड़ा खिसक कर बोला, "नहीं, आदमी जो चाहता है, वह उसे नहीं मिलता।"

"क्यों नहीं मिलता ? फिर उसके मन में आकांक्षाएं पैदा क्यों होती हैं ?"

"शायद ठीक चेष्टा की कमी रहती होगी।"

रजनी कुछ कहनेवाली थी कि कंपाउंडर घुस आया। बोला, "अजीत-बाबू आये हैं।"

"भेज दो।" रमाकांत के बदले रजनी ने आज्ञा दी।

अजीत हँसता-हँसता अंदर आया, "नमस्कार रजनी देवी ! बहुत दिनों में दर्शन हुए। कहो रमाकांत !"

"प्रसन्न तो हैं ?" रजनी ने पूछा।

"सांसारिक माप-दंड से तो नहीं। मेरी पत्नी प्रसव पीड़ा से गुजर गयी। सभी मरेंगे—एक रेखा के इस पार और उस पार मानव का जन्म-मरण, फिर भी थोड़ी आसक्ति पैदा हो गयी थी। स्त्री को प्यार करता था, अतः उसकी मृत्यु पर सोचा, आत्महत्या कर लूं। पर बाद में सोचा, अभी नहीं, कुछ दिन बाद।"

इस बीच रोगी आ जाने से रमाकांत को उठकर जाना पड़ा।

'आत्महत्या महापाप..." रजनी ने रुक-रुककर कहा।

"जो जिंदा रहना चाहते हैं, उनके लिए पाप है, मगर जिन्हें आत्महत्या

की जरूरत है, उनके लिए पाप नहीं है। सभी धर्म इस बात पर एकमत हैं कि, जरूरत पड़े तो शरीर को मिटा देना चाहिए, यानी आत्महत्या कर लेना चाहिए।"

"पर सबका कहना है कि आत्महत्या महापाप है।"

"पहली बात तो यह कि आत्मा की हत्या कहां है? गीता तो पढ़ी होगी—'न जायते म्रियते वा कदाचित्...'। आत्महत्या करने की शक्ति ही आदमी को पशु से भिन्न करती है। मनुष्य के अलावा सभी प्राणियों का शरीर अपने-आप झड़ता है। मनुष्य ही अपनी स्वाधीन इच्छा अथवा स्वाधीन प्रकृति के कारण जब चाहे तभी शरीर छोड़ सकता है, अर्थात् आत्म-हत्या कर सकता है। जो शरीर को आत्मा मानता है, वह आत्महत्या नहीं कर सकता। पर जो सचेतन आत्मा को अवचेतन शरीर से पूर्णतः भिन्न मानता है, वह जरूरत के समय आत्महत्या क्यों नहीं कर सकता? जैन-धर्मावलंबी साधु भूखे-प्यासे रहकर शरीर छोड़ते ही हैं। हिंदू धर्म में भी इच्छा-मृत्यु का विधान है। भीष्म, पांचों पांडव, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि ने इच्छा-मृत्यु का ही वरण किया था। बात इतनी ही है कि शरीर और आत्मा का विच्छेद करते समय अगर मन में किसी भी तरह की दुविधा रहे तो वह पाप है।"

"प्यार में असफल होनेवाली लड़कियों की आत्महत्या पाप है या पुण्य?"

"अगर दुविधा है तो पाप, नहीं है तो पुण्य।" कहकर अजीत ने हाथ में बंधी घड़ी की ओर देखा और बोला, "देर हो गयी। रमाकांत काम में लगा है। मैं चलता हूं। नमस्कार।"

"नमस्कार।" रजनी ने हाथ जोड़ लिये।

रजनी भी जाने के लिए तैयार हो गयी। रमाकांत रोगियों को छोड़कर सड़क तक पहुंचाने आया। बोला, "नाश्ता नहीं किया! नौकर तब से गया है, आता ही होगा।"

"अब रहने दें, कष्ट न करें।"

"अच्छा, कल आना। सिनेमा चलेंगे। बाहर होटल में ही खायेंगे।"

"यदि न आ सकी तो याद करेंगे न ?" रजनी ने जाते-जाते वेणी पीठ पर डाल ली। ढंग बहुत परिचित था; सुकेशी या और कोई सुंदरी करती तो रमाकांत की बांछें खिल जातीं। पर रजनी ने किया इसलिए आशंका और आश्चर्य भी हुआ। पूछा, "क्या मतलब ?"

आप इतना आश्चर्य क्यों कर रहे हैं ? शायद मुझे दूर जाना पड़ सकता है, इसलिए कहा।"

"तुम्हारी यात्रा मधुर और सार्थक हो।" रमाकांत सोत्साह बोला।

"आपकी जैसी इच्छा..." रजनी ने इतने धीरे से कहा कि रमाकांत सुन नहीं पाया। फिर बोली, "यदि सुविधा हो तो सवेरे हमारी तरफ़ आइएगा।"

"हां-हां, जरूर ! "

लेकिन दूसरे दिन रमाकांत रजनी की बात एकदम भूल गया था। जाने के लिए मन में विशेष आग्रह था भी नहीं। वह तो यही चाहता था कि रजनी उसके जीवन से हमेशा के लिए दूर चली जाये। सुकेशी में उसे सब-कुछ मिल रहा था—वैभव, सौन्दर्य, सभी कुछ। कभी-कभी उसका मन आशंकित हो जाता, कहीं रजनी निष्फल होकर सुकेशी को उसके विरुद्ध भड़का तो नहीं रही है ? वह धीरे-धीरे रजनी से इस प्रकार दूर हट जाना चाहता था कि रजनी को दुःख भी न हो और संपर्क भी टूट जाये। पर कई कारणों से वह रजनी का साथ छोड़ नहीं पा रहा था। वह बहुत भोली थी और उससे काफ़ी पैसा ऐंठा जा सकता था। लेकिन रजनी और सुकेशी को साथ-साथ निवाहना क्रमशः मुश्किल होता जा रहा था। लगता था, जैसे रजनी के मन में थोड़ा संदेह उत्पन्न हो गया है और सुकेशी भी कुछ तो अनुमान करती ही होगी। यदि सुकेशी को उसके उद्देश्यों का पता चल गया तो सब गड़बड़ा जायेगा।

वह दुकान में बैठा सोच रहा था कि किसी ग्राहक ने आकर बताया, रजनी ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। सवेरे देर तक न उठी और कमरा भीतर से बंद मिला तो दरवाजा तोड़कर देखा गया। बिस्तर पर उसकी

लाश पड़ी थी और मेज पर एक कागज लिखा था, "मेरी मृत्यु के लिए कोई जिम्मेदार नहीं। मैं स्वेच्छा से, सुख से मर रही हूं।"

"आप कह क्या रहे हैं। ऐसा मजाक···"

"मैं अभी वहीं से देख-सुनकर चला आ रहा हूं।"

क्षणभर के लिए रमाकांत विह्वल हो उठा। फिर मन-ही-मन बोला—"ओह, इतनी भीरु! पलायनवादी! ऐसों के साथ कोई सहानुभूति नहीं होनी चाहिए।"

दुपहर में डाकिये ने रमाकांत के नाम का एक रजिस्टर्ड पार्सल लाकर दिया। उसने खोल कर देखा तो सामरसेट माम का लिखा अंग्रेजी उपन्यास था— 'आफ़ ह्यूमन बांडेज'। किताब के अंदर सौ-सौ के पचास नये नोट थे। रमाकांत स्तब्ध रह गया। आनंद और आशंका से उसे अपने हृदय की गति बंद होती-सी लगी। किताब के अंदर रुपयों के नीचे एक पत्र भी था—

"प्रिय रमाकांतबाबू,

पत्र पढ़कर आश्चर्य तो नहीं होगा। सारे गहने बेचकर जो पैसे मिले, सब आपको भेज रही हूं। और पैसे मेरे पास नहीं हैं। पिताजी से मागूंगी तो उन्हें संदेह हो जायेगा।

आपको मैं प्यार करती थी, अब भी करती हूं। मैं कुरूप हूं, देखने में कुत्सित हूं, अत: आप चाहकर भी मुझे प्यार नहीं कर सके। फिर भी अन्य लोगों की अपेक्षा हँसते और मजाक करते समय आप, जो थोड़ा-बहुत स्नेह मुझे दे पावें, वही मेरी स्मृति में अमूल्य संपत्ति है। जानती हूं कि सुंदर होती तो आप मुझसे विवाह जरूर करते। पर जो भाग्य में नहीं, उस पर सोचने से क्या लाभ? मृत्यु के बाद मेरे गहने मेरे प्रेमी को मिलें इसलिए उनके रुपए भेज रही हूं। अगले जन्म में अगर सुंदर हुई तो आपके पास आऊंगी। इति।

—रजनी।'

पत्र पढ़कर रमाकांत दुःखी नहीं हुआ। इसी को कहते हैं व्यर्थ की भावुकता और रुग्ण आदर्शवाद! उसने नोटों को आलमारी में बंद कर दिया। पत्र को फाड़कर माचिस दिखा दी। पुस्तक को एक बार उलट-पलट कर देखा और उसपर अपना नाम लिख कर महीने-भर पुरानी तारीख डाल दी।

बाईस

स्नेह के आने के दस दिन के अंदर ही उसके पति के चार पत्र आ गये। प्रत्येक पत्र में पति ने अनुनय की थी—प्रिय! कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हरदम तुम्हारी याद आती रहती है। यदि यही स्थिति रही तो मेरी क्या दशा होगी, कह नहीं सकता। मां कितनी ही चेष्टा करे, मेरा खाना-पीना समय पर नहीं हो पाता। तुम थीं तो जी भरकर खाता था। तुम तो पराया समझकर पीहर चली गयी। क्यों न हो, स्त्री के लिए पीहर ही अपना होता है। ससुराल वाले सब गैर होते हैं।"

इसी तरह की कितनी ही बातें लिखी थीं। स्नेह जानती थी कि पति उसे प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। वह अधिक दिन उनसे दूर रह नहीं पायेगी। हो सकता है, किसी दिन बिल्वमंगल की तरह यहां आ धमकें। पति के प्यार की बात सोचकर उसका मन उत्फुल्ल हो जाता। मन-ही-मन स्वप्नेश्वर महादेव से पति की मंगल-कामना करने लगती।

ससुराल में थी तो पीहर जाने के लिए रोज अनुनय-विनय करती थी। रोज रात में पति से कहती, कुछ दिन के लिए हो आने दो। पीहर आ गयी तो जल्दी लौटने, पति के पास जाने को व्यग्र रहती है। सोच-सोचकर परेशान होती है, मेरे बिना जरूर सूख गये होंगे, खाने-पीने का ठिकाना न होगा! पर इतनी जल्दी लौटेगी कैसे?

शिवनाथ कभी-कभी महेश्वर पाढ़ी के घर चला आता और घंटे-दो घंटे बातें कर लौट जाता। कई बातें उठतीं। कभी स्नेह के ससुराल की बातें होतीं, कभी गांव-घर की, पर ज्यादातर देवीपाद ही चर्चा का विषय होता। वह घर के बारे में सोचता होगा या नहीं, संन्यासी लोग कैसे रहते हैं, मोक्ष क्या है, स्वर्ग कहां है, इसी तरह की बातें। देवीपाद की बातें करते-करते दोनों में काफी घनिष्ठता हो गयी थी।

एक दिन शिवनाथ ने कहा, "देवीपाद के संन्यासी होने से हमारे वंश का उद्धार हो गया। शास्त्रों में लिखा है कि घर में कोई संन्यासी हो जाये तो मातृ और पितृ दोनों कुलों की सात पीढ़ियों की सद्गति हो जाती है।"

सुनकर स्नेह सहसा पूछ बैठी, "क्यों शिबू, मैं क्या सद्गति नहीं पाऊंगी ? मैं तो संन्यासिनी नहीं हूं ?"

"मेरे मतानुसार तो हिंदू स्त्री-मात्र संन्यासिनी है। उसके लिए विवाह संन्यास लेने की तरह है। अपने मां-बाप, घर-गांव, साथी-सहेली को छोड़कर वह दूसरे के मां-बाप और घर-गांव को अपना सर्वस्व मान लेती है। यह क्या कम त्याग की बात है ? खाली संसार छोड़ने से ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। संसार में रहकर भी जो दूसरों को धर्म-सम्मत सुख दे, अपने कर्त्तव्य का ठीक पालन करे, उसे संन्यासी ही मानना होगा और उसकी अवश्य सद्गति होगी। शास्त्र में साफ लिखा है कि स्त्रियां पति की सेवा कर सद्गति पाती हैं। पर हिंदू पत्नियों की विशेषता है कि वे स्वामी के सान्निध्य और पति-प्रेम को सद्गति से भी श्रेष्ठ मानती हैं।"

सुनकर स्नेह की आंखों में पता नहीं कौन-सा भाव आ गया और प्रकाश की हल्की-सी किरण कौंध गयी।

इसी तरह बातें होती रहतीं। कभी डाकिया चिट्ठी फेंक कर चला जाता। स्नेह उठाकर पीछे की ओर भाग जाती। शिवनाथ हँसता कितने पत्र आते हैं तुम्हारे पास ! तुम्हें छोड़कर पंद्रह दिन भी नहीं रह सकते ! चिट्ठी पढ़कर स्नेह लौट आती। चिट्ठी पढ़कर लौटते समय उसकी आंखें सदा गीली हो जातीं और चेहरे पर विषाद-भरे आनंद की आभा फैल जाती

थी। उसके वाद गप्पें प्राय:जम नहीं पाती थीं। शिवनाथ मजाक करता—"रमेशवाबू तुम्हें वहुत चाहते हैं, क्यों? अच्छा…अच्छा, मैं चलता हूं, कल आऊंगा। शायद तुम्हारी इच्छा एक वार फिर उस चिट्ठी को पढ़ने की हो रही है। पढ़ो-पढ़ो, मैं चला।"

स्नेह को आये तेरह-चौदह दिन होगए थे। शिवनाथ वैठाथा। डाकिया पत्र डालकर चला गया। स्नेह हमेशा की तरह लेकर पीछे चली गयी। कुछ समय वाद लौटी तो चेहरा उदास था, आंखें छलछला आयी थीं। और दिनों की तरह शिवनाथ ने मजाक किया, "विल्वमंगल सांप की रस्सी या शव पर चढ़कर कव नदी पार कर रहे हैं?"

स्नेह ने रुआंसे स्वर में कहा, "शिव, मुझे वालेश्वर छोड़ आओगे? चले चलो, मेरे भैया! तुम वालेश्वर देखना चाहते थे न? तुम्हारा घूमना हो जायगा।"

"क्यों क्या वात हुई? इतनी जल्दी जाने का क्या कारण हो गया?"

"वे अध्यापक की नौकरी के लिए लखनऊ गये थे, लौटने के वाद उनकी तवीयत खराव हो गयी। तेज वुखार...? मैं जाऊंगी, अव यहां रुक नहीं सकती।"

"क्यों इतनी चिंता करती हो! उसकी मां से भी तुम क्या ज्यादा सेवा कर सकोगी?" शिवनाथ ने कहा।

"नहीं-नहीं, मैं जाऊंगी। उन्हें वुखार है, यह जानने के वाद यहां रह नहीं सकती। मांजी वालेश्वर नहीं हैं, हरिद्वार गयी हैं। कव लौटेंगी, पता नहीं।"

"मौसी से कहा?"

"वे किसी के घर गयी हैं, आने पर वताऊंगी।"

स्नेह कमरे में जाकर विस्तर-वक्स संभालने में लग गयी। शिवनाथ पास खड़ा देख रहा था। इसी बीच यशोदा पड़ौस से लौट आयी। शिवनाथ ने कहा, "मौसी देखो, दीदी पर भूत सवार हो गया है। न वात, न वात का नाम, कहती है, वालेश्वर जाऊंगी।"

यशोदा घबरा उठी। व्यग्र कंठ से पूछा, "क्या हुआ स्नेह ?"

उनकी तबीयत खराब हो गयी है, मां। हाय, मैं क्या करूं ? कैसे जल्दी-से-जल्दी वहां पहुंच जाऊं।" कहते-कहते उसकी आंखों में आंसू आ गये।

"मगर किसके साथ जायेगी ? तेरे बापू तो कालूपाड़ा गये हैं। उन्हें आ जाने दे।"

"क्यों, शिबूभैया तो है। छोड़ आयेगा अपनी दीदी को।"

वे लोग बालेश्वर पहुंचे तो रात के नौ बज रहे थे। स्नेह को देखकर रमेश को जितनी खुशी हुई उतना ही आश्चर्य भी हुआ।

"मैंने सोचा भी न था कि तुम आ जाओगी।"

"वाह, आपकी तबीयत खराब हो और मैं नैहर में मौज करूं ! क्यों, तबीयत कैसी है ?"

"अभी आयी हो। पहले खा-पी लो, फिर बताऊंगा कि मेरी तबीयत कितनी बिगड़ गयी है। क्या विश्वास नहीं होता मेरी बात का ? देखो, कितना दुबला हो गया हूं !"

"बड़े शरारती हैं आप ! झूठ-मूठ ही लिख दिया कि तबीयत खराब है। पढ़कर मेरी तो जान ही सूख गयी। और आप मुस्करा रहे हैं !"

"मेरी रानी ! मुझे कितना चाहती हो !" रमेश स्नेहप्रभा के बहुत करीब आ गया था। "न चाहती तो क्या पत्र पढ़ते ही भागी आती ?"

"अरे, वहां शिवनाथ खड़ा है ! कुछ तो शरम करो। पिताजी कालूपाड़ा गये हैं, इसलिए इसे साथ लाना पड़ा। आप क्यों नहीं चले आये ? हां भई, गरीब ससुराल क्यों जाने लगे ?"

"तुम जिन देवीपाद की बात कहती थी, यह उनका भाई है ?"

"हां।"

रमेश ने शिवनाथ की ओर देखा। वह हेना से कुछ कहकर हँस रहा

था। रमेश ने कहा, "मुझे वहुत अच्छा लगा। वह रमाकांत-जैसा नहीं है।"

तेईस

'तृप्ति होटल' पहुंचकर पीतांवर कपड़े वदल रहा था कि किसी ने दरवाजा थपथपाया। ट्रेन में सोने की जगह नहीं मिली थी, अतः वह रात की थकावट और नींद पूरी कर लेना चाहता था। सोचा, ग्लोरिया, सोफी या कल्पना आदि कोई होगी, इसलिए रूखी आवाज में कहा, "अभी मैं जरा व्यस्त हूं, वाद में आना।"

पर थपथपाहट जारी रही तो झुंझलाकर किवाड़ खोल दिये। सामने सुकुमारदादा खड़े धीरे-धीरे मुस्करा रहे थे।

"दादा, आप ? क्षमा करेंगे,। मैंने सोचा, और कोई होगा। आइए, अंदर आइए।"

दादा भीतर आकर आरामकुरसी पर लेट गये। पीतांवर खाट पर वैठा।

"कहो, पीतांवर ! गाव के हालचाल सुनाओ। सब ठीक है ?"

"मेरा वह पागल वेटा मर गया। इसीलिए लौटने में देर हो गयी।"

"मर गया ? ओफ्, वड़े दुःख की वात है ! तुम्हारी पत्नी को तो वहुत दुःख हुआ होगा। क्या किया जाये, जन्म-मरण तो हमारे हाथ में है नहीं। कुछ दिन और गांव में रह लेते तो वेहतर होता।"

"रहता कैसे ? आपने जिस उद्देश्य से भेजा था, वह खवर भी तो लेकर आना था। सारसी जरूर कह रही थी कुछ दिन रुकने के लिए।"

"अच्छा, तो क्या हुआ ? स्नेहप्रभा अभी कहां है ?"

"अपने नैहर। लगता है, अभी पंद्रह दिन और वहीं रहेंगी।"

"तो बालेश्वर में रमेशबाबू घर पर अकेले हैं ? उनकी मां, बहन आदि भी होंगी।"

"हैं ना स्नेहप्रभा के साथ गयी है और उसी के साथ लौटेगी ? मां उनकी हरिद्वार गयी है; उसके अभी लौटने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"आज तुम आराम करो। रात की नींद पूरी कर लो। शाम को आओगे तो मैं योजना फिर से समझा दूंगा। कल रात निकल जाना। साथ में देवीपाद और कल्पना भी जायेंगे।"

"ठीक है।"

"सतर्क रहना। देवीपाद के लिए यह पहला अभियान है। वह कोई भूल न कर बैठे। वैसे उसकी दूरदर्शिता पर मुझे विश्वास है।"

"आप निश्चिंत रहें।"

"इसमें सफल होने के बाद मधुसूदन षडंगी के घर की सोचेंगे। नकदी गहने मिलकर लाखेक तो होंगे ही ?"

"इस बार जो खबर मिली उससे अनुमान है कि डेढ़ लाख से कम न होगा।"

"ठीक है, तो दूसरा निशाना यही होगा।"

पीतांबर ने सोने की बहुत चेष्टा की, पर आंखों से नींद उड़ गयी थी। सुकुमारबाबू के आने से पूर्व सोचा था कि बिस्तर पर पड़ते ही नींद आ जायगी। हां, गाढ़ी नींद न आना उसके लिए कोई नयी बात नहीं थी। पर गांव में जाने पर थोड़ी शांति मिलती थी। नारियल की ठंडी हवा उसे मस्त कर देती, बरामदे में चटाई डालकर सारी रात पड़ा रहता था। पर इस बार गांव में उतना सुख भी नहीं मिला। विधाता उसके बेटे को ही उठा ले गया!

किशोर उसका बेटा ? पीतांबर को हँसी आ गयी। क्या वह नहीं जानता कि किशोर उसका बेटा नहीं था।

पीतांबर को बहुत पुरानी बात याद आ गयी—नवंबर का महीना होगा, वह गांव गया था। इस बार सात-आठ महीने बाद घर आया था।

रात में बरामदे से सोने के कमरे में गया और सोयी हुई सारसी को जोर से बांहों में भर लिया था। किंतु तभी सारसी के मुंह से जो सुना, उसने क्षण-भर में उसको नपुंसक बना दिया, उसके उत्साह का सारा महल ढह-कर चकनाचूर हो गया था। उसकी पत्नी सारसी जरूर किसी से गर्भवती हो गयी थी। नींद से उठते-उठते सारसी ने कहा था—तीन महीने हो गये। उसके बाद इधर-उधर की बातें कर उसे सुला दिया था और स्वयं उठकर बाहर चला आया था। उसे लग रहा था जैसे कोई उसके सिर पर हथौड़ा चला रहा हो!

उसके बाद उसने सारसी को और सारसी के फूलते हुए पेट को घृणा से देखा था। और बच्चे के जन्म के कुछ दिन बाद आश्चर्य से यह भी देखा था कि जादव किशोर की और मधुसूदन षडंगी की नाक एक जैसी थी। फिर भी सारसी की भर्त्सना या ताड़ना उसने नहीं की थी। लोग यही जानते थे कि वह कलकत्ते में एक साधारण रसोइया है, जब कि असल में वह अराजक दल का सदस्य और सुकुमारदादा का प्रिय शिष्य था। शुरू-शुरू में बच्चे को देखता तो उसे घृणा के कारण सिहरन-सी होती थी। पर धीरे-धीरे वह बच्चे को स्नेह करने लगा। सच देखा जाये तो उसमें बच्चे का क्या कसूर था? उसने तो कहा नहीं था कि मुझे अवैध-प्रणय में डूबकर पैदा करो। बेचारे किशोर ने अंत में चूजे के लिए जान दे दी!

द्वार पर फिर थपथपाहट सुनाई दी और विचारों की कड़ी टूट गयी।

"कौन है?"

"मैं सोफी हूं?" हल्का स्वर सुनाई दिया।

कूदकर दरवाजा खोला। सोफी उसे धक्का देती हुई सीधी अंदर घुस गयी। द्वार स्वतः बंद हो गया। दोनों ने एक दूसरे को आलिंगन में बांध लिया।

कल्पना बाहर प्रतीक्षा कर रही थी। अंधेरी रात में विराट् महल के सामने खड़ी थी। पीतांबर ने झरोखे की ओर रस्सी फेंकी। इसके बाद

देवीपाद और पीतांवर दोनों ऊपर चढ़ गये। देवीपाद का दिल धक-धक कर रहा था। सब कमरों को देखते हुए वे आगे बढ़ गये। कुछ में अंधेरा था। दो-तीन में हल्का नीला प्रकाश था। एक कमरे के सामने पीतांवर रुक गया और फुसफुसाकर कुछ कहा।

देवीपाद ने देखा, वड़ा पलंग है और लोहे की तिजोरी, मेज आदि। घर के अंदर शांति और नीरवता थी। सिर्फ सांसों का आना-जाना सुनाई पड़ रहा था। स्वर बदलकर पीतांवर ने आवाज लगायी— "वावू! वावू!"

दरवाजे पर ठक···ठक···ठक।

"कौन?"

"जी, आपको कोई नीचे बुला रहे हैं। कार में आये हैं।"

कोई उत्तर नहीं। शायद सज्जन फिर सो गये थे।

"वावूजी, वावूजी!"

फिर खड़खड़ाहट।

"क्या! "इस वार स्वर झुंझलाहट के कारण ऊंचा हो गया था।

चप्पल घसीटकर दरवाजे तक आने की आवाज सुनायी दी।

पीतांवर और देवीपाद सांस रोके खड़े थे। समय आ रहा था कार्य करने का।

दरवाजा खुला।

सामान्य-सा संघर्ष।

उसकी नींद पूर्णतः खुल गयी थी। पर तवतक रस्सी, रूमाल आदि से अवशकर वरामदे में बंडल की तरह गिरा दिया गया था।

"तुम यही ठहरो, मैं अंदर जाता हूं।"

"पीतांबर घुसा। देवीपाद देहरी के पास खड़ा रहा।"

पलंग के पास जाकर पीतांबर खड़ा हो गया। कोई और सो रहा था। एक औरत! यह कौन? स्नेह तो गांव में थी। यह गहरी नींद में है, पड़ी रहने दो।"

देवीपाद को आवाज दी, वताया, अंदर कोई और भी सो रहा है। अधिक सतर्कता की जरूरत थी। देवीपाद वरामदे में चला गया।

पीतांवर ने तकिये के नीचे से चावी निकाली। सेफ़ खोली। इसके वाद अभ्यासी हाथों से शीघ्र ही आवश्यक वस्तुएं वैग में पहुंच गयीं। धीरे-धीरे, विना कोई आवाज किये, सेफ वंद कर दिया। पलंग पर चावी रखते समय कौतूहलवश टॉर्च जलायी।

एक अत्यंत रूपवती स्त्री सोयी थी, अर्धनग्नावस्था में। स्नेहप्रभा का वह रूप सौंदर्य उसके अनजाने पहली वार देखा तो पीतांवर विचलित हो गया। क्षण भर के लिए रोमांच-सा हो आया। पर दूसरे ही क्षण साव-धान हो गया। थैली लेकर बाहर निकल आया। बोला, "तुम्हारे घर स्नेहप्रभा नाम की लड़की आती-जाती थी, याद है?"

"हां-हां, महेश्वर पाढ़ी की..."

"वहां भीतर सोयी है।"

"कौन?" मानो देवीपाद की सांस रुक गयी। विश्वास नहीं हुआ, अत: पुन: पूछा, "कौन?"

"स्ने...ह"

दो अक्षर सुनते ही देवी सारी सतर्कता भूल गया। अंदर कदम वढ़ा दिये।

"अरे-अरे, सुनो! अंदर जा रहे हो तो सतर्क रहना। मैं नीचे हूं। देर मत करना। घर में ज्यादा आदमी लगते हैं।"

पीतांबर रस्सी के सहारे नीचे उतर गया। इस बीच देवीपाद पलंग के पास पहुंच गया था और हल्के नीले प्रकाश में स्नेहप्रभा को तल्लीन होकर देख रहा था।

शैया पर रूपवती निश्चिंत लेटी थी। यही है उसकी प्रेमिका। सुख स्वप्न-उल्लसिता, मुकुलित अधर—अस्त-व्यस्त वस्त्र, बिखरे केश—साड़ी खिसकी हुई, चोली खुली हुई।

मानव और मानवी।

अंधकार !

लालसा की ललक-भरी घनघटा !

"स्नेह, मुझे पहचानती हो ?" देवीपाद ने पलंग पर स्नेह के चेहरे के पास झुककर धीरे से पूछा।

गर्म सांस सीधी स्नेह के कोमल-चिकने गालों पर पड़ी। वह चौंककर जगी और फौरन पलंग के नीचे उतर खड़ी हो गयी। वस्त्र भी संभाल लिये।

"कौन ?" और बटन दबाया तो कमरे में रोशनी हो चुकी थी।

"तुम! तुम!" देवीपाद को पहचानकर स्नेह को मानो विजली छू गयी, आंखें फैल गयीं और चेहरा आश्चर्य से भर गया। वह कुछ भी कह नहीं पा रही थी।

'मैं...मैं...स्नेह। मैं तुम्हारा देवी-देवीपाद-देवीभाई !"

देवीपाद आगे वढ़ा। लालसा उसके रोम-रोम में तरंगित हो रही थी। उसने स्नेह को आलिंगन में जकड़ लिया। क्षण-भर के लिए दोनों के शरीर एकाकार हो गया। पर दूसरे ही क्षण स्नेह छिटककर दूर खड़ी हो गयी। चीखी, "छोड़ो ! छोड़ो, तुम कैसे आये ?"

उसकी आंखें चारों ओर कुछ खोज रही थीं। पलंग पर उसके पति नहीं थे। सेफ के पास नीचे कुछ नोट-कागज आदि विखरे पड़े थे। चिल्लायी, "क्या हुआ ? चो..."

"शोर मत करो, स्नेह !" देवीपाद ने उसके मुंह पर रूमाल रख दिया।

गुस्से में भरकर स्नेह ने उसका हाथ छिटक दिया, "मेरे पति कहां हैं ? तुम यहां इस वक्त क्यों आये ? तुमने मेरा धन चुराया है ?" स्वर में तूफान का पूर्वाभास था।

"स्नेह, मैंने तुम्हारे प्रेम को ठुकराया, इसलिए तुम्हें जरूर मुझ पर गुस्सा होगा। मैंने गलती की, मुझे माफ कर दो। उस दिन जो नहीं कह सका था, स्नेह आज कह रहा हूं—तुम्हीं मेरी सबकुछ हो, मैं तुम्हें हमेशा

प्यार करता रहा हूं। तब मेरी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया था। तुम्हारी याद में मैं बहुत तड़पता रहा हूं, बहुत। आज मैं तुम्हें लेने आया हूं, स्नेह।"

देवीपाद प्रणय-निवेदन कर रहा था और स्नेहप्रभा घबड़ाहट में इधर-उधर देख रही थी। बार-बार पूछती थी, "मेरे पति..."

"चलो, स्नेह। कोई जाग जायेगा तो सब गड़बड़ हो जायेगा।"

"चांडाल! दुष्ट! शैतान..." स्नेह ने पूरी ताकत से एक चांटा देवीपाद के गाल पर मारा और बोली:

"तू पराई स्त्री के शरीर को हाथ लगाता है! बता, मेरे पति कहां हैं?"

देवीपाद गाल सहलाते-सहलाते स्नेह की ओर बढ़ा। उसकी आंखों में क्रोध, अपमान और दृढ़ निश्चय की आग जल रही थी।

पलक झपकते स्नेहप्रभा उसके कंधे पर थी। उसे उठाकर मुड़ा तो देखा, कोई चौखट पर खड़ा उसका रास्ता रोके है। देवीपाद के जूडो के अभ्यस्त हाथों ने क्षणंभर में प्रतिरोध करने वाले के कान छुए और वह जड़ से उखड़े हुए पेड़ की तरह कांप गया। दूसरे ही क्षण देवीपाद का छुरा उसके पेट के आर-पार निकल गया। घायल आदमी के मुंह से आवाज निकली "देवी..." खून का फव्वारा छूटा और पुनः आहत संबोधन सुनाई दिया, "देवी...दे..."

देवीपाद ने आवाज पहचानी और आंखें फाड़कर देखा—शिवनाथ छटपटा रहा था। फर्श पर लाल खून फैल गया था। शिवनाथ में कोई हलचल नहीं थी। केवल उसकी फटी हुई आंखें टक लगाये देवीपाद को देख रही थीं। स्नेहप्रभा को कंधे से उतारकर देवीपाद बैठ गया। शिवनाथ का शरीर ऐंठा, जोर से कांपा और उसके गले से घुटी हुई अस्पष्ट आवाज निकली—दे···वी···

"शिव···"देवीपाद पुकार उठा।

लेकिन अब शिवनाथ कहां था? उसकी आंखें तो खुली थीं, पर वह निश्चेष्ट सो गया था। देवीपाद ने उसकी छाती पर हाथ लगाकर हिलाया। बेकार। शिवनाथ नहीं उठा।

"उठो शिव ! उठो ! क्यों नहीं उठते ? देखो, स्नेह...स्नेह, शिव नहीं उठता।" स्नेह की ओर धीरे-धीरे सिर उठाकर देखते हुए देवीपाद ने कहा, "स्नेह, शिवनाथ नहीं रहा।"

वह उठकर खड़ा हो गया। अपने हाथों को देखा, उसके हाथ खून में सने थे। सारा शरीर खून से तर था—खून ! अपने भाई शिवनाथ का खून !

स्नेह खड़ी थी। वह भी खड़ा था। दोनों खम्भे की तरह खड़े थे। कुछ समय इसी तरह बीता। अचानक स्नेहप्रभा ने नींद से जागे हुए की तरह कहा, "देवीभाई, यह तुमने क्या किया ?"

देवीपाद ने यंत्रवत दुहरा दिया "क्या किया ! क्या किया ! मैंने यह क्या किया !"

चीत्कार...करुण विलाप...मर्मभेदी रुदन...इसके बाद एक पुरुष और एक स्त्री का 'हू-हू' कर रोना। चारों ओर फैली निःस्तब्धता डर गयी। पेड़ से निशाचर पक्षी उड़ गये। नीचे अराजक-दल के सदस्य लौट गये।

मानव रो रहा था ! मानवी चीत्कार कर रही थी ! आधी रात के अंधेरे सन्नाटे की छाती पर भ्रातृहंता का परिताप पछाड़ें खा रहा था— मैंने क्या कर डाला ! हे भगवान, यह क्या हो गया।

नारी-पुरुष के रुदन का समवेत स्वर गली के राह-बंद दरवाजों की सेंधों से घुसकर बस्ती के मकानों में सोये लोगों को जगाने लगा था, जब कि कमरे के बाहर गलियारे के अंधेरे में रस्सियों से जकड़ा पड़ा रमेश बार-बार खड़े होने की कोशिश कर रहा था।

□ 'मंडल' का

उपन्यास-साहित्य

□□